वैदिक धर्म

[अप्रैल १९५२]

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहसंपादक
श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

व्यवहार और परमार्थसाधक वेद

वेद जैसा व्यवहारके साधन करनेका उत्त मार्ग बताता है वैसा ही परमार्थके साधनका भी उत्तम मार्ग बताता है। इसको जनताके सामने रखनेका कार्य वैदिक-व्याख्यान मालासे किया जा रहा है। यदि पाठक इन व्याख्यानोंको पढेंगे तो उनको पता लग जायगा कि एक एक वेदका पद और वाक्य उत्तम व्यवहार उत्तम रीतिसे किस तरह करना चाहिये, इसका बोध देता है और वही परमार्थका साधन किस तरह करना चाहिये यह भी दर्शाता है। इसलिये ये व्याख्यान केवल पढकर ही छोडनेके लिये नहीं हैं, परंतु इसका प्रत्येक वाक्य अभ्यास करने और वारंवार मनन करने योग्य है। इस समय ये व्याख्यान तैयार हैं—

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।

२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।

३ अपना स्वराज्य।

४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।

प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने और पैकिंग समेत डा० व्य० =) दो आने है। प्रत्येकके लिये आठ आने भेजनेसे ये मिल सकते हैं। आगेके व्याख्यान छप रहे हैं-

५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।

६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

इस तरह अनेक विषयोंपर ये व्याख्यान होंगे। इन विषयोंका मनन और प्रचार जगत्में होना चाहिये। समाजकी रचना इन सिद्धान्तोंपर होनी चाहिये। तब आज कलकी अनेक समस्यायें और कठिनतायें दूर हो सकती हैं और लोगोंको अपूर्व शांति मिल सकती है।

परमार्थ साधनके लिये विश्व छोडनेकी आवश्यकता नहीं है, प्रत्युत विश्वकी सेवा करते हुए ही परमार्थ साधन हो सकता है यह वेदका आदेश है।

पाठक इन व्याख्यानोंका उत्तम अध्ययन, मनन और उत्तम अनुष्ठान करें, इसलिये इन व्याख्यानोंके अन्तमें प्रश्न भी दिये हैं। इन प्रश्नोंका उत्तर जो दे सकते हैं उनका व्याख्यानका मनन ठीक हुआ ऐसा समझ सकते हैं।

बिना प्रयत्न किये ही वैदिक धर्म आचरणमें नहीं आ सकेगा, वह केवल शब्दोंमें ही रहेगा, केवल शब्दोंमें रहा धर्म उत्तम सुख नहीं देता। वैदिक धर्मसे व्यक्ति और समाज एवं राष्ट्र व्यवस्थाका सुधार हो जाय, इसलिये हरएकको बडा प्रयत्न करना चाहिये।

ऐसा प्रयत्न करनेवाले हों तो प्रचारार्थ उनकी सहायता चाहिये।

निवेदनकर्ता

आनन्दाश्रम — श्री. दा. सातवलेकर,

किल्ला-पारडी (जि. सूरत) — अध्यक्ष-स्वाध्याय-मंडल

वर्ष ३३ | अंक ४

वैदिक धर्म

क्रमांक ४०

चैत्र, विक्रम संवत् २००९, अप्रैल १९५२

वीरोंकी प्रगति

प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शुशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥

ऋ० ७। ७४। ६

(ये जनानां नृपातार:) जो लोगोंका उत्तम प्रकारसे पालन करते हैं और (अ-वृकास) जो क्रूरकर्म कभी भी नही करते वे (रथा इव प्रययुः) रथके समान प्रगति किया करते है (उत) और वे (नरः) नेता वीर (स्वेन शवसा) अपने निजसामर्थ्यसे (शुशुवु) बढते जाते है (उत) और (सुक्षिति क्षियन्ति) वे उत्तम निवासस्थानोंमे रहा करते है।

जो राष्ट्रकी जनताका उत्तम प्रकारसे पालन करनेवाले वीर हुआ करते है वे कभी भी क्रूर एवं हिंसक कर्म करके प्रजाको कष्ट नही पहुँचाया करते। जिस प्रकार रथ पूरी तेजीसे दौडकर अपने गन्तव्य स्थानपर शीघ्र पहुँच जाता है उसी प्रकार वे अपने ध्येयको शीघ्र प्राप्त कर लिया करते है। वे अपना सामर्थ्य बढाया करते है और उत्तम निवासस्थानमे ही सदैव रहा करते है।

भारतके आदरणीय महामंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू जीके द्वारा हुए 'अतुल प्रॉडक्टस्' के उद्घाटनके समय की हुई

विजयकी प्रार्थना

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥
(वा० यजु० ३०।३)

ॐ येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा निषेध ॥
(अथर्व० ३।१५।५)

ॐ आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतां, आ राष्ट्रे राजन्यः शूर
इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां, दोग्ध्री धेनुः, वोढाऽन-
ड्वानाशुः सप्तिः, पुरंधिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य
यजमानस्य वीरो जायतां, निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु,
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां, योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥
(वा० यजु० २२।२२)

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

हे प्रभो ! सब कष्टों और दुःखोंको हमसे दूर करो और सब प्रकारके कल्याण हमारे पास लाओ। धनकी वृद्धि करनेकी इच्छा करते हुए हम जिस मूलधनसे इस व्यवसायको चलाना चाहते हैं, वह धन इस व्यवसाय के लिये जितना चाहिये उतना पर्याप्त हो, किसी तरह कम न हो। हे प्रभो ! इस व्यवसायमें लाभ का नाश करनेवाले जो भी हों, उनको तुम अपने प्रभावसे दूर करो और हमें इसमें यश दो।

हे ज्ञानके प्रभो ! हमारे राष्ट्रमें ज्ञानी ब्राह्मण, शूरवीर महारथी क्षत्रिय, प्रामाणिक व्यापारी और कुशल शिल्पी हों। दूध देनेवाली गौवें, बलवान बैल और चपल घोडे हों। स्त्रियां विदुषी और प्रयत्नशील हों, संतान शूरवीर और परिषद्में संमान प्राप्त करनेवाली हों। हमारे राष्ट्रमें समयपर वृष्टी हो, विपुल धान्य निर्माण हो और हमारा योगक्षेम उत्तम रीतिसे चले ऐसा करो।

व्यक्तिके अन्तःकरणमें शान्ति रहे, राष्ट्रमें शान्ति रहे और विश्वमें स्थायी शान्ति हो।

'आनंदाश्रम'
किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

श्री. दा. सातवळेकर
अध्यक्ष—स्वाध्याय-मण्डल

स्मशान भूमिके लिये दान देनेवालोंका

सत्कार समारंभ

(ता० १३-२-५२ को बलसाडमें हुए पं. सातवलेकरजी के व्याख्यानका अविकल उद्धरण)

● ● ● ● ● ● ●

बलसाडके नागरिकोंने बलसाडके हिंदु नागरिकोंके अन्त्येष्टी यज्ञके लिये एक अच्छी स्मशानभूमि तैयार की है। इतनी अच्छी स्मशानभूमि मुंबईको छोडकर दूसरे स्थानमें मैंने अभीतक देखी नहीं है। यहां प्रेतके दहन करनेकी सब प्रकारकी सुविधाएं हैं, सर्दीके दिनोंमें ठंडे पानीसे स्नान करना असंभव हो जाता है उस समय स्नानके लिये गरम पानी मिलनेकी सुविधा यहीं है, ऐसी किसी अन्य नगरमें नहीं है। स्मशानमें जो आते है वे दुःखी लोग ही आते हैं, आनन्दसे उल्हसित पुरुष इधर नहीं आता। ऐसे दुःखी जनोंके दिल बहलावेके लिये यहां सुन्दर उद्यान है। वृष्टिके दिनोंमें प्रेताग्नि जलसे न बुझे इसके लिये योग्य योजना है। वृष्टिके समय प्रेतदाह होनेतक बैठनेके लिये यहां उत्तम मकान बने हैं, इसी तरह अन्यान्य सुविधाएं भी बहुत हैं। और सब सुविधाएं अत्यंत सोच विचार करके की हैं इसलिये बलसाडके नागरिक तथा यहांका श्री हिंदु स्मशान भूमि व्यवस्थामंडल हार्दिक धन्यवादके लिये योग्य है, तथा जिन हिंदुओंने इस उत्तम कार्यके लिये दान दिया है वे प्रशंसाके योग्य हैं।

स्मशानकी रमणीयता

यहांकी स्मशान भूमीकी रचना उत्तम है, और आकर्षक भी है। यहांका उद्यान देखनेसे ऐसा कभी नहीं मालूम होता कि यह स्मशान है। स्मशानका नन्दनवन यहां बनाया गया है। तथापि मैं किसी नागरिकको यहां आओ ऐसा निमंत्रण नहीं दे सकता। आप जानते हैं कि स्मशानमें किसीको बुलाना अच्छा प्रतीत नहीं होता। यदि मैं किसी स्कूल, वा पुस्तकालय अथवा व्यायाम भूमिके दाताओंका सन्मान करनेके समारंभमें उपस्थित होता, तो वहां मैं आप सबको आदरसे बुलाता। पर यह भूमि स्मशानभूमि है, इसकी आकर्षकताको देखकर प्रसन्न होनेपर भी आप यहां आइये ऐसा मैं कह नहीं सकता। ऐसा इस स्थानका भय जनतामें है। पर आप यह देखिये कि स्कूल, पुस्तकालय, व्यायाम स्थानका उद्घाटन होनेपर भी वहां हरएक नागरिक निश्चयसे जायेगा, ऐसा नहीं कह सकते। पर यह ऐसा स्थान है, कि यहां आपकी इच्छा हो वा न हो आपको अवश्य आना ही चाहिये। आप भले ही पुस्तकालयमें न जांय, स्कूल काळेजमें भी न जांय, पर इस स्थानपर हरएकको आना ही होगा। ऐसा यह स्थान है। इसलिये इस स्थानमें आना ही है, छुटकारा नहीं है, फिर इस स्थानकी शोभा बढाकर यहां जितना आराम मिलना योग्य है उतना लोगोंको क्यों न दिया जाय? इसलिये मैं बलसाडके लोगोंको धन्यवाद देता हूं कि जिन्होंने स्मशानका रमणीय उद्यान बनाया है।

स्मशानका भय

स्मशानका भय क्यों प्रतीत होता है? जैसा हरएक जन्मता है वैसा ही हरएकको मरना तो है। मरनेके विना जन्म नहीं हो सकता। किसी स्थानपर मृत्युका दुःख हुआ तो दूसरे स्थानपर जन्मका आनंद हो सकता है। पर आप चाहते हैं कि पुत्रके जन्मका आनन्द तो मिले, पर किसीकी मृत्युका दुःख न हो। यह संभव नहीं है। जन्म ही जन्म होते रहेंगे और मृत्यु नहीं होंगे, तो लोगोंको खानेको अन्न नहीं मिलेगा, रहनेके लिये स्थान नहीं मिलेगा। इसका विचार करनेसे पता लगेगा कि मृत्यु भी अत्यंत आवश्यक घटना है और वह लाभदायक भी है। गीतामें कहा है—

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहं। (गीता)

'अमरत्व और मृत्यु, जन्म और मृत्यु ये ईश्वरके ही दो रूप हैं।' अर्थात् ये दोनों मिलकर हैं। अतः मृत्युका भय नहीं मानना चाहिये। मृत्यु है क्या चीज? आत्माके ऊपर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय ऐसे पांच कोट हैं, इनमें केवल एक सबसे बाहरका सबसे

स्थूल अन्नमय कोश यहां गिरता है, बाकीके चार कोट आत्माके शरीरपर रहते हैं। आप बाहरसे आये और अपने शरीरपरका एक कोट उतार कर रख दिया तो क्या दुःख करना चाहिये ? बाकीके चार कपडे आपके शरीरपर हैं। वे फटे नहीं, जैसे थे वैसे ही हैं। जो बाहरका कोट फट गया था, उसको आत्माने उतारा और वह आत्मा दूसरा नया कोट तयार करके लेनेकी तैयारी कर रहा है। आत्मा नया कोट पहरनेके आनंदमें है, पर आप फटा कपडा उसने फेंक दिया, इसलिये रोते पीटते हैं। क्या यह रोनेवालोंका ज्ञानी होना साबित कर सकता है ? जरा विचार तो कीजिये।

मरणोत्तरका आनंद

मृत पुरुषका आत्मा मरणोत्तर बडा आनन्दमें रहता है क्योंकि उसके रोगी देहसे उसका संबंध छूट जानेके कारण रोगी देहके कष्ट भोगनेका दुःख दूर हुआ, यह उसके आनंदका विषय है। मृत्युके पश्चात् आत्मा आनंदमें उक्त कारण रहता है। उसके संबंधी इस समय रोते पीटते हैं यह देखकर उसे आश्चर्य प्रतीत होता है कि ये क्यों रो रहे हैं, क्योंकि मैं तो आनन्दमें हूं। मृत्युके क्षणसे ही मेरा दुःख दूर हो चुका है। फिर ये रोते क्यों हैं ?

मृत्यु सचमुच आनंद देनेवाला है, मृत्यु परमेश्वरका रूप है और परमेश्वर आनन्दरूप है। यह परमेश्वरकी अपार दया है कि उसने इस लोकमें मृत्यु रखा है। मृत्युके कारण ही इस स्थूल शरीरके दुःख कष्ट दूर होते, रहनेके लिये मनुष्योंको स्थान मिलता और खानेके लिये अन्न मिलता है। मृत्यु न होता तो कष्टोंकी सीमा नहीं थी।

ब्रह्मा, विष्णु और महादेव ये तीन देव हिंदुओंने माने हैं, वस्तुतः एक ही परमात्माके ये तीन कार्य हैं। इनमें ब्रह्मा उत्पत्ति करता है, विष्णु पालन करता और शिवजी संहार करते हैं। इनमें कोई देव कम सामर्थ्य-वाला नहीं है जो अन्याय करनेवाला समझा जाय। ब्रह्मा ज्ञानका देव है, विष्णु धनका देव है और शिवजी युद्धके देव हैं। ज्ञान धन और युद्धकी शक्तिपर राष्ट्र बनते, रहते और बढते हैं। युद्धकी तैयारी न करनेपर राष्ट्रकी क्या अवस्था होगी वह विचार करनेवालोंको स्पष्ट रीतिसे विदित हो सकती है। युद्धके विना, अर्थात् मारनेकी शक्तिके विना कोई राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। युद्ध एक मृत्युका ही रूप है। इसका अर्थ राष्ट्रके पास मृत्युकी शक्ति हाथमें न रही तो गुण्डोंके आक्रमणके नीचे राष्ट्र समाप्त होगा। मृत्युकी इतनी आवश्यकता है। यदि राष्ट्रमें जनन बढ गया और मृत्यु न हुआ, तो पचास वर्षोंमें वह राष्ट्र आपत्तिमें पडेगा। इस कारण मृत्यु हित करनेवाला है।

शिवका अर्थ कल्याण, मंगल अथवा शुभ है। मृत्यु ही शिव है। वह कल्याण करनेवाला, मंगल करनेवाला तथा शुभ करनेवाला है। पर बिचारे मृत्युके ये उत्तम गुण कोई जानता नहीं।

शिवजी संहारकी देवता है, शिवजी स्वयं, उनकी पत्नी पार्वती काली माता, उनके पुत्र गणेश और कार्तिकेय तथा उनके सब गण युद्ध करनेमें अत्यंत प्रवीण हैं, संहार करनेमें उनके समान देवोंमें कोई दूसरा देव नहीं है। कार्तिकेय और गणेशजीकी उत्पत्ति ही युद्ध करनेके लिये है। महा तपस्यासे ये दो पुत्र शिवजीको हुए और वे दोनों युद्ध देव ही हैं। स्वयं शिवजी स्मशानमें रहते, चिता भस्म शरीरको लगाते और दण्डमाला धारण करते और हड्डियोंके शस्त्र बर्तते हैं।

शरीरपर सर्पोंके आभूषण धारण करते, घरमें इनका वाहन नंदी बैल, पार्वतीका वाहन सिंह, गणेशजीका चूहा और कार्तिकेयका मोर ये बाहरके विश्वमें एक दूसरेको खा जानेवाले हैं, पर शिवजीके घरमें ये आपसका वैर भूलकर प्रेमसे रहते हैं। वैर भूलकर प्रेमसे रहनेका भाव ही शिवजी दे रहे हैं। राष्ट्रमें गुण्डे अपना गुण्डापन भूल जांय और सज्जनको पीडा न दें और शान्तिसे रहें, यह महादेवकी संहारकी शक्ति राष्ट्र रक्षकोंके अंदर जाग्रत रहेगी, गुण्डोंको मृत्युकी दहशत रहेगी तभी गुण्डे सज्जन जैसे शान्त रीतिसे रह सकते हैं। शिवजी यही पाठ राष्ट्र रक्षकोंको दे रहे हैं।

सैनिक शिवजीके अनुयायी हैं। रक्षकोंका यह भयानक रूप है। पर इस भयसे ही हम सब रात्रीमें शान्तिसे सो सकते हैं, इसलिये इन युद्ध देवोंको 'शिव' कहा है। शिवजी स्मशानमें रहते हैं, चिताभस्म शरीरपर लगाते, हड्डियोंके आभूषण करते हैं, और चिताओंके जलनेपर आनंदसे नाचते हैं। शिवजीका ताण्डवनृत्य प्रसिद्ध है।

मृत्युके समय आनंदसे नाचनेवाले ये देव हैं, यह इनका रहस्य है। मृत्युमें आनन्दका अनुभव करना आसान नहीं है। वह अनुभव शिवजी करते हैं इसीलिये शिवजी महादेव हैं।

शिवजी योगीराज हैं। योगसामर्थ्य इनमें है। सब प्रकारका सामर्थ्य शिवजीमें है इसीलिये उनको महादेव कहते हैं। देवोंमें महादेव बनना कोई आसान काम नहीं है। वह संमान महादेवको प्राप्त हुआ है। इसका कारण भी वैसा ही असाधारण है। समुद्रका मन्थन हो रहा था, एकके पीछे एक रत्न समुद्रसे आने लगे और देव उनको लेने लगे थे। लक्ष्मी प्रथम आई, उसका पाणिग्रहण विष्णुने किया, पश्चात् कौस्तुभ हीरा आया, उसको भी भगवान् विष्णुने धारण किया। पारिजातक तीसरा आया उसको इन्द्रने अपने उद्यानमें रखा, सुरा आयी वह भी सुरलोगोंने ली, पश्चात् धन्वंतरी आया वह भी देवोंके दवाखानेमें रहा, चन्द्रमा आया तो देवोंने आकाशकी शोभाके लिये टांग दिया, कामधेनु, ऐरावत, रंभाएं और अश्व उत्पन्न हुए। इनको देवोंने अपने भोगके लिये रखा। इसके पश्चात् 'विष' उत्पन्न हुआ। वह उत्पन्न होते ही सबको जलाने लगा। कोई उसके पास जा नहीं सकता था, इतनी गर्मी उसमें थी। सब देव भयसे कांपने लगे। पूर्वोक्त सुखके साधन अपने पास रखनेवाले सब देव इस विश्वको जलानेवाले विषको देखकर भयभीत हुए और सब मिलकर शिवजीके पास गये और उनसे प्रार्थना करने लगे कि 'इस विषकी अग्निसे बचाओ।' दयामय प्रभु शिवजी विश्वहित करनेके लिये सदा तत्पर रहते ही है। वे आये और अपने अपूर्व योगबलसे उस विषको पीकर उसको आत्मसात् करके विषका भय दूर किया। संकटके समय जो संरक्षण करता है वही महादेव कहलाता है। इस तरह महादेवकी महती शक्ति है, इसलिये उनके पास दुष्टोंके दमनका कार्य सौंप दिया है। ये महान् देव इम सशानके देव हैं।

अन्त्यसंस्कार

श्मशान उसको कहते हैं जहां प्रेतका अन्त्यसंस्कार करते हैं। अन्त्यसंस्कार भूमिमें गाडना, जलमें बहाना, अग्निसे जलाना, वायुमें रखकर पक्षियोंको खिलाना तथा कृमि कीटोंके सुपुर्द करना ऐसे पांच प्रकारसे होता है। हिंदुओंमें ये सभी प्रकार आज चालू हैं। संन्यासी, लिंगायत आदि लोग प्रेतोंको गाडते हैं, काशी आदि तीर्थोंमें प्रेतोंको नदीमें बहा देते और वहां मछलियां उसको खाती हैं, बहुतसे हिंदू जलाते हैं, पारसी पक्षियोंसे प्रेतका भक्षण करवाते हैं और हिंदु तेरहवें दिन आटेका पिंड कौवेको देते हैं। इस तरह ये सब प्रकार हिंदुओंमें चालू हैं। ईसाई तथा मिस्लीम केवल गाडते हैं। पारसी केवल पक्षियोंको देते हैं, पर हिंदु ये सब विधि करते हैं। वेदमें भी यह सब लिखा है—

> ये निखाता ये परोप्ताः
> ये दग्धा ये चोद्धिताः। अथर्व. १८।२।३४

जो गाडे हैं, जो बहाये हैं, जो जलाये हैं, और जो पक्षियोंके लिये ऊपर धर दिये हैं। ये चार विधि प्रेतके अन्त्यसंस्कारके हैं ऐसा वेदमें कहा है। अर्थात् ये सब वेदको अज्ञात थे ऐसी कोई बात इसमें नहीं है। वैदिक समयसे ये प्रकार हिंदुओंमें चलते आये हैं और आज भी है। प्रेत संस्कार मनुष्योंकी रहनेकी बस्तीसे दूर होना चाहिये ऐसा वेद कहता है—

> अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्य
> तं निर्वहत परिग्रामादितः ॥ अथर्व. १८।२।२७

'मनुष्य इस प्रेतको अपने रहनेके घरोंसे बाहर निकालें और ग्रामसे भी बाहर दूर ले जांय।' गांवसे बाहर प्रेतको उठाकर ले जांय और वहां उसका संस्कार करें। क्योंकि प्रेत रहा तो सड जाता है और बदबू आती है, जलाया तो उसमेंसे बुरे वायु बाहर आते हैं जो जीवित प्राणियोंमें उपद्रव करते हैं, इसलिये प्रेत संस्कार गांवसे बाहर करना चाहिये।

गाडीसे प्रेतको ले जाओ

वेदमें गाडीमें प्रेतको रखकर उस गाडीको सजाकर प्रेतको शहरसे बाहर ले जाओ, ऐसा कहा है। देखिये-

> इमौ युनज्मि ते वह्नी
> असुनीताय वोढवे।
> ताभ्यां यमस्य सादनं
> समितीश्चावगच्छतात् ॥
> अथर्व. १८।२।५६

' प्रेतका वहन करनेके लिये ये दो घोडे या बैल मैं जोतता हूं। ये प्रेतको शहरके बाहर ले जांय। ये दोनों स्मशानतक प्रेतको ले जांय और वहांतक उस प्रेतकी जातीकी या मित्रोंकी मंडली जाय।' तथा और देखिये—

> इदं पूर्वं अपरं नियानं
> येन ते पूर्वे पितरः परेताः।
> पुरोगवा ये अभिषाचो अस्य
> ते त्वा वहन्ति सुकृतां उ लोकम् ॥
> अथर्व. १८।२।४४

' यह वाहन-गाडी—पहिले थी वैसी ही यह आज भी है। इसीसे तेरे पूर्वज पितर स्मशानतक पहुचाये गये थे। ये जोते हुए बैल या घोडे तुझ प्रेतको पुण्य कर्म करनेवालोंके लोकको पहुंचाते हैं।

' इससे स्पष्ट होता है कि एक गाडी नगरमें रहती है अथवा अधिक गाडियां भी जनसंख्याके अनुसार होती होंगी। इस गाडीसे प्रेतके पूर्वज स्मशानतक गये थे, यह प्रेत अभी जा रहा है और आगे जो मरेंगे वे भी इसी गाडीसे जायंगे। यह गाडी और गाडीको जोते ये बैल या घोडे इस मृत आत्माको सुकृत करनेवालोंके लोक तक पहुंचाते रहते हैं।

प्रेतकी गाडी स्मशानमें पहुंचनेके पश्चात्

> आ प्रच्यवेथां अप तन्मृजेथां
> यद् वां अभिभा अत्र ऊचुः। अथर्व. १८।४।४९

' गाडीसे बैलोंको पृथक् करते हैं, उनको शुद्ध करते हैं, उनको अच्छे शब्द कहे जाते हैं और गाडीसे उनको छोडकर पृथक् कर देते हैं।'

इस तरहका यह अथर्ववेदका वर्णन है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक समयमें प्रेतको गाडीमें रखकर उस गाडीको बैल या घोडे जोते जाते थे और उनके द्वारा वह गाडी स्मशानतक जाती थी, वहां बैलोंको संमानपूर्वक पृथक् किया जाता था और प्रेतको संस्कार करनेके लिये चितापर रखा जाता था।

यह पद्धति इस समय खिस्तियोंमें दीखती है। पारसी, मुसलमान और हिंदु कंधेपर उठाकर ही आजकल ले जाते हैं। जहां स्मशान समीप है वहां कष्ट नहीं होता, परंतु जहां स्मशान दूर होता है वहां बडा कष्ट होता है। इसलिये यह वेदोक्त गाडी प्रेतके वहनके लिये आज बर्ती जाय तो अच्छा है। यह पद्धति वेदोक्त होनेसे कोई हिंदु इसका विरोध नहीं कर सकेगा। क्योंकि वेदका वचन हिंदुके लिये शिरोधार्य है।

हिंदु जनताके सन्मुख यह वेदकी पद्धति मैं इसलिये रख रहा हूं कि हिंदु इसका विचार करें और उचित प्रतीत हुआ तो इसको प्रचारमें भी लावें। यह गाडी और अधिक सजायी भी जा सकती है और आज जो प्रेतका भयानक स्वरूप दीखता है वह सुशोभित भी दीख सकेगा। इसलिये यह पद्धति आचरणमें लाने योग्य है।

अन्त्यसंस्कारमें शरीर गौके शुद्ध घीसे भिगोना चाहिये। सब लकडियां गौके घीसे भिगोनी चाहिये। यह वैदिक विधि है। इससे शरीरके वजन जितना गायका घी लगता है। आजकल इतना घी नहीं है, इसलिये बिंदुमात्र सिर, गला, नाभी और पांवमें रखते हैं। यह आपत्कालकी अवस्था है। इतना घी, चन्दन और हवन सामग्री रही तो प्रेतसे निकलनेवाले दूषित वायु बुरा परिणाम नहीं करते। पर आज यह सब होना कठिन है।

अस्तु, इस समय जितना हो सकता है उतना बलसाडकी इस संस्थाने किया है और अन्य नगरोंके लोगोंको बडा-हरणके रूपमें उनके सामने रखा है। मैं सब गुजरातके सब नगरोंके लोगोंसे प्रार्थना करता हूं कि वे अपने नगरोंमें ऐसी उत्तम व्यवस्था स्मशानकी करें और इस आवश्यक तथा सर्वोपयोगी भयंकर स्थानको इस तरह रमणीय बनावें।

इस कार्यके लिये बलसाडके लोग प्रशंसाके पात्र हैं। इसमें संदेह नहीं है।

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखांक १२]

(लेखक— श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

स्वसंरक्षणकी शिक्षा

पहिलेके कई लेखों द्वारा हमने यह बात स्पष्ट की है कि हमारी प्राचीन कथाओंमें किस प्रकारके परिवर्तन हो गये हैं। अब हमें यह देखना है कि हमारे संस्कारोंमें किस प्रकारसे परिवर्तन हो गये हैं। इससे हम यह जान सकते हैं कि ऋषिकालमें जनताके ऊपर किस प्रकारके संस्कार होते थे और आज किस प्रकारके होते हैं।

पहिले ७२ संस्कार हुआ करते थे और आज नाममात्रके लिये हम १६ संस्कार मानते हैं। प्रायः विवाह-संस्कार किया जाता है। आज केवल ब्राह्मणोंमें उपनयन संस्कार होता है। शेष संस्कार केवल ग्रंथोंमें ही निहित हैं। किन्तु यह उपनयन संस्कार भी क्या ऋषिकालके समान आज होता है? यदि कोई यह प्रश्न करे तो उसका यही एक मात्र उत्तर सम्भव है कि वैसा-नहीं होता। इस विषयके स्पष्टीकरणके लिये हम ऋषिकालीन एक उदाहरणपर विचार करेंगे। कश्यप ऋषिके आश्रममें महोत्कट विनायकका जो उपनयन संस्कार हुआ था उसका वर्णन गणेशपुराण (२।१-१०) में आया है। विस्तारसे यदि किसीको देखना हो तो वह मूल ग्रन्थमें ही देखे। हम संक्षेपसे यहाँ देते हैं।

विनायकका उपनयन

कश्यप ऋषिके आश्रममें जो संस्कार हुआ उसमें किसी प्रकार रस्म अदाई करदी गई होगी, ऐसा नहीं समझना चाहिये। क्योंकि सभी प्रकारके संस्कार सर्वथा विधिपूर्वक ही उस कालमें हुआ करते थे।

यह वही विनायक था जिसकी वर्तमान युगमें ' विनायकी चतुर्थी ' बडे उत्साहके साथ मनाई जाती है। इसका उपनयन कश्यप ऋषिके आश्रममें हुआ था। आश्रममें यज्ञ हुआ ही करते हैं। वहाँ इस बटूको लाया गया और यज्ञोपवीत धारण, कौपीन धारण, मेखला बंधन और दण्ड-धारणादि सब होजानेपर वर्तमान परिपाटीके अनुसार विनायकने भिक्षा मांगी और आश्रममें एकत्रित हुए लोगोंने उसे भिक्षा दी एवं बटुको आशीर्वाद दिया। यह संस्कार जैसा आज होता है वैसा ही उस समय हुआ, किन्तु उसमें जो परिवर्तन हुआ है वह देखनेयोग्य है। हम उसी पर विचार करेंगे—

मेखलाका अर्थ कमरपट्टा है। यह मेखला कमरके चारों ओर बांधते हैं। इस समय यह मन्त्र बोला जाता है—

> इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्।

यह मेखला (यह कमरपट्टा) शरीरमें बलको बढाती है, यदि कोई बुरा वचन कहे तो उसको रोकती है, वर्ण पवित्र करके भाग्यकी अभिवृद्धि करती है।

कमरपट्टा बांधनेसे शक्ति बढती है। दूसरेके अपशब्दोंका प्रतिकार करनेका सामर्थ्य उत्पन्न होता है। अपने भाग्यकी अभिवृद्धि की जा सकती है।

आज भी यदि कोई अपनी कमरमें कमरपट्टा बांधे तो उसे यह अनुभव हो सकता है कि मुझमें बल बढा है। अपशब्द सहन न करूँ और यदि कोई अपशब्द बोले तो उसका प्रतिकार करूँ, ऐसी भावना बन जाती है। ऐसी प्रतीति स्वाभाविक ही है। अतः कमर ढीली न होनी चाहिये। कमर तो हमेशा कसी हुई होनी चाहिये। सम्भवतः इसीलिये वैदिककालके लोग छः या आठ वर्षके बालकको इस प्रकारका कमरपट्टा बांधा करते थे।

कमरपट्टा बांधनेके पश्चात् उसके हाथमें दण्ड दिया जाता था। उसे देते समय यह मन्त्र बोला जाता था।

यो मे दण्डः परा पतद्वैहायसोऽधिभूम्याम्।
तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥

यह दण्ड स्वर्गसे इस भूमिपर आया है। वह मैं अपने हाथमें धारण करता हूं। इससे मेरी आयु बढेगी, ज्ञान बढेगा और तेजकी भी अभिवृद्धि होगी।

मेरी आयु बढनी चाहिये, मेरा ज्ञान बढना चाहिये और मेरा तेज भी बढना चाहिये। इसके लिये दण्डधारण करना है। यहाँ संसारको क्षणभङ्गुर नहीं माना जाता, यहाँ तो दीर्घ आयुष्यका कार्यक्रम है। दूसरेसे अपशब्द सहन नहीं किये जावेंगे, अपना बल बढाया जावेगा, अपना ऐश्वर्य भी बढाया जाएगा और भाग्यवान् बननेका प्रयत्न किया जाएगा। यह उद्देश यहाँ स्पष्ट रूपसे दिखाई देता है।

इस प्रकार विनायकके ये सम्पूर्ण संस्कार हुए और वह भिक्षाके लिये निकल पडा। आजकल हम ऐसी भिक्षामें लड्डू आदि देते हैं या कोई कोई रुपये, जेवर आदि डालते हैं; किन्तु हमारे चरित्र नायक विनायकको कश्यप ऋषिके आश्रममें जो भिक्षा मिली वह विचार करने योग्य है।

शस्त्रास्त्रोंकी भिक्षा

विनायकको वरुणने 'पाश' दिया और यह बतलाया कि इनसे किस प्रकार शत्रुओंको मारा जाय। परशुराम की माता रेणुकाने 'परशु' दिया और कहा कि इस परशुसे शत्रुओंका पराभव कर। इस प्रकार वहाँ एकत्रित हुए व्यक्तियोंने अनेक शस्त्र एवं अस्त्र विनायकको दिये तथा सबने मिलकर जो आशीर्वाद दिया वह यह है—

उपादिशत् दुष्टनाशं कुरु शीघ्रं विनायक॥
गणेशपुराण २।१०।३०

हे विनायक! ये शस्त्रास्त्र ग्रहण करो तथा दुष्टोंका शीघ्र विनाश करो।

यह उपनयन संस्कार कश्यप ऋषिके आश्रममें हुआ है। अतः इसमें किसी प्रकारकी सुधारकता या धर्म विरोधिताका कार्य होनेकी सम्भावना नहीं होगी। अतः यह जो कुछ व जिस प्रकारसे हुआ है वह सर्वथा नियम एवं परम्पराके ही अनुसार हुआ है।

आठ वर्षके बालककी कमरमें कमरपट्टा बांधते हैं, उसके हाथमें लाठी देते हैं, अन्य अनेक शस्त्रास्त्र देते हैं और उससे कहते हैं कि दुष्टोंका विनाश कर, ये सब बातें ध्यान देने जैसी हैं।

यह संस्कार तथा यह आशीर्वाद ऋषिकालमें स्वयं सेवक संघ में प्रविष्ट होनेके लिये होगा, ऐसा स्पष्टतः प्रतीत होता है। अन्यथा कमरपट्टा, दण्ड, फरसा, पाश आदिकी क्या आवश्यकता है? ब्रह्मचर्याश्रममें वेदशास्त्रोंका अध्ययन तो होता ही था, किन्तु उसके साथ युद्धका, स्वसंरक्षणका तथा शत्रुओंके निर्दलनका भी शिक्षण दिया जाता था।

आठ वर्षका बालक जब घरसे निकलता था तो वह कहता था कि 'मृत्योरहं ब्रह्मचारी' (अथर्व) मैं मृत्युको आलिङ्गन देनेवाला ब्रह्मचारी हूँ तथा आजसे मेरा सम्बन्ध मातापितासे छूटकर गुरुके साथ हुआ है। यह उसका निश्चय होता था। वह कमसे कम १२ वर्षतक गुरुगृहपर ही निवास करता था। इस समयमें भी उसे विद्याके साथ ही स्वसंरक्षणकी शिक्षा भी प्राप्त होती थी। जो क्षत्रियोंके बालक हुआ करते थे उन्हें युद्ध शास्त्रकी शिक्षा दी जाती थी तथा अन्य त्रैवर्णिकोंको साधारणतः शस्त्रधारण, स्वसंरक्षण, बचावकी कल्पना आदि सिखाया जाता था। क्योंकि स्मृतिशास्त्रने भी आपत्तिके समय सबके लिये शस्त्र धारण करनेका उपदेश दिया है।

उस कालमें शस्त्र चलानेकी शिक्षा सभीको दी जाती थी। इसीलिये भिक्षामें भी शस्त्र दिये गये। आज हम बटुसे कहते हैं कि 'शस्त्र धारण मत करो।' उस युगमें तो कश्यप ऋषिके आश्रममें बटुको शस्त्र दिये गये थे और उनका प्रयोग किस प्रकार किया जाय, यह भी बताया गया था! कमरपट्टा, लाठी और फरसा यह सब तो ब्रह्मचारीके पास होना ही चाहिये। यह थी स्वसंरक्षणकी तैयारी। इस प्रकार आठ वर्षसे ही यदि कुमार स्वसंरक्षणके कार्यमें इतना दक्ष हुआ तो बडा होनेपर वह स्वयंका तथा राष्ट्रका संरक्षण करेगा ही, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

स्वसंरक्षणकी शिक्षा

छोटेपनसे ही बच्चोंको इस प्रकारकी स्वसंरक्षणकी शिक्षा मिलनी चाहिये। वैदिककालमें सम्पूर्ण शिक्षा गुरुकुल पद्धतिसे हुआ करती थी। इस पद्धतिकी विशेषता यह थी कि वहाँ रहनेवाले समस्त विद्यार्थी समतापूर्वक रखे जाते थे। श्रीकृष्ण जैसा सम्पत्तिमें पलापोसा और सुदामा जैसा दरिद्र ये दोनों गुरुके घरपर एक जैसे स्तरपर रहते थे। घरकी सम्पन्नता अथवा गरीबीमेंसे उन कुमारोंके पास कुछ भी शेष नहीं बचता था। सबकी एक जैसी वेषभूषा, एक जैसा खानपान, एकसा रहन सहन। केवल बुद्धि सम्बन्धि न्यूनाधिकताका ही वैषम्य था। शेष सब कुछ समान ही था।

आज हम बच्चोंको बोर्डिङ्ग हाऊसमें रखते हैं। किन्तु वहाँ भी समता नहीं रहती। बोर्डिङ्गमें रहनेवाला लड़का अपनी घरकी अमीरीसे उन्मत्त अथवा गरीबीसे दीन बना रहता है। इन दोनोंको एक स्तरपर लानेके लिये आज हमारी शिक्षामें कोई योजना नहीं है और न ही शिक्षण संस्थाओंमें भी कुछ है।

समत्वका जीवन

गुरुकुलकी शिक्षण व्यवस्थामें समत्वको स्थान था और उसका समाजपर इष्ट परिणाम भी हुआ करता था। समाजमें शान्तिकी स्थापना करनी हो तो हमें अपने बालकोंको घरके वातावरणसे हटाकर इस प्रकारके समताके वातावरणमें रखना उचित है।

जातियों एवं उपजातियोंके झगडे, अन्य प्रकारकी उच्च नीचता आदि को दूर करनेके लिये कुमारावस्थासे हो ऐसी तैयारी होनी चाहिये। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ऋषिकालीन गुरुकुलोंमें उचित शिक्षा व्यवस्थाका प्रबन्ध किया गया था।

स्वतन्त्र शिक्षा

तत्कालीन गुरुकुलीय शिक्षा राज्यशासनद्वारा नियन्त्रित न थी। ऋषियोंकी भावना थी-' वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं शिक्षाके सम्पूर्ण सूत्र उनके अधिकारमें थे। अतः राज्य-व्यवस्थामें किसी प्रकारकी उथल पुथल होजानेपर भी उसका दुष्परिणाम गुरुकुलोंपर नहीं होता था। गुरुकुलोंकी रक्षाका भार राजाओंपर था। वे दान देते थे, धनी लोग दान देते थे और इस प्रकार आश्रम एक अच्छी सम्पन्न अवस्थामें स्थित थे। कभी कभी दुष्ट राजाओं द्वारा इन आश्रमोंको लूट भी लिया जाता था। इतने अधिक सम्पन्न थे तत्कालीन आश्रम। इनमें सहस्रों विद्यार्थी अध्ययन करते थे। प्रतिदिन हजारों रुपयोंका व्यय इन आश्रमोंका था। यहाँके ऐसे स्वतन्त्र वृत्तिके शिक्षणालयोंके कारण ही तत्कालीन समाज तेजस्वी था।

समता और तेजस्विताकी यह विशेषता थी। इन आश्रमोंमें शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग किया जाता था। आश्रमकी रक्षाके लिये भी इनका उपयोग होता था तथा युवकोंको उनकी शिक्षा देकर स्वसंरक्षणक्षम बनानेके लिये भी वे काममें आते थे।

योगकी शिक्षा

इसके अतिरिक्त आठवे वर्षसे शारीरिक रक्षा एवं सुस्थितिके लिये और बल संवर्धनेके लिये योगासन एवं योगके बलवर्धक व्यायाम भी सिखाये जाते थे। शरीर दीर्घायु हो, रोगोंको घुसने न दे, शीतोष्ण सहन कर सके इतना सशक्त बनानेका प्रयत्न किया जाता था। योगासनोंमें अनुशासन अपेक्षित है। अनुशासनका पालन करना यहाँ सबके लिये आवश्यक माना जाता था। इस विषयमें किसीको छूट नहीं दी जाती थी। अतएव अनुशासनयुक्त नागरिकोंका निर्माण यहाँ होता था। तथा २५ वर्षतक उसे गुरुकुलमें हो रहना पडता है।

योगसाधन यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार ध्यान-धारणा-समाधि तकका कार्यक्रम सबको करना पडता था। समाधि तक सफलता प्राप्त हो अथवा न हो, प्रथम चार अङ्गोंका अभ्यास प्रत्येकको करना ही पडता था। बादके चार अङ्ग अपनी अपनी प्रकृतिके ऊपर निर्भर रहते थे। अनेक बार हम गुरुकुलोंका अनुशासन अत्यन्त कठोर होता हुआ देखते हैं। वास्तवमें वह कठोर होता भी था। रामलक्ष्मण जैसे ऐश्वर्यकी गोदमें पले हुए राजकुमार अचानक वनवासको जाते हैं और वहाँ १२-१४ वर्षोतक बडे आनन्दसे रहते हैं, क्या कोई राजकुमार आज इस प्रकारसे रह सकता है! राम लक्ष्मणके लिये वैसा सहन करना कैसे सम्भव हुआ। क्योंकि गुरुकुलवासके समय उन्हे वैसे जीवनकी और कष्ट सहन करनेकी आदत थी। आजकलके नाजुक युवको

जैसे यदि रामलक्ष्मण होते तो शायद महीना पन्द्रह दिनमें ही उन्हें दवाखानेमें लाना पडता !

ओजस्वी युवक

गुरुकुलका वातावरण ही ऐसा होता था कि वहाँसे युवक हृष्टपुष्ट, कष्ट सहन करनेवाले, ऐश आराम न करनेवाले, स्वतन्त्र विचार रखनेवाले, ध्येयनिष्ठ, ओजस्वी, आशिष्ठ, बलिष्ठ और दृढिष्ठ बनते थे। परमेश्वरके सिवाय और किसीके आगे न झुकनेवाले और तेजस्वी होते थे। कोई भी राजा गुरुकुलोंका नियन्त्रण नहीं करता था। आज तो सभी शिक्षण संस्थायें राजाओंके आधीन है, अतः उनमें शिक्षाके स्वातंत्र्य तेजके दर्शन आज नहीं हो सकते। आज तो विश्वविद्यालयका अधिष्ठाता राजाका अधिकारी होता है। उस समय ऐसा नहीं था। ऋषियोंके हाथमें ही सम्पूर्ण सत्ता होती थी। ऋषिगण लोभमोह आदिसे निर्लिप्त होनेके कारण उनके गुणावगुणका परिणाम शिक्षापर नहीं पडता था।

आजकी शिक्षा राजाके आधीन होनेके कारण राजाके बुरेभले आचरणका परिणाम उसपर होता है। ऐसा उस समय नहीं था।

शिक्षाप्रणाली स्वतन्त्र होनी चाहिये। राज्यशासनके रजोगुणका परिणाम शिक्षापर हुए बिना नहीं रहता। वह रजोगुण शिक्षण संस्थाओंमें नहीं आना चाहिये। ऋषिकालमें ऐसा नहीं होता था। क्योंकि ऋषियोंकी स्वतन्त्र सत्ता थी। उनपर राजाका कर भी लागू नहीं था। इतनी स्वतन्त्रता गुरुकुलोंको प्राप्त थी। यह स्वतन्त्रताका वातावरणही तत्कालीन विशेषता थी। इस शिक्षास्वातन्त्र्यके कारण उस समयकी संस्कृति भी सर्वथा स्वतन्त्र होती थी। हमारे विनायकका उपनयन कश्यपके आश्रममें हुआ और विद्याध्ययन भी वहींपर हुआ। यह बटु सचमुच आगे चलकर नेता बना। शापादपि शरादपिकी उक्ति उसने चरितार्थ की। हमें भी इन बातोंपर विचार करना है। पीछे हमने देखा कि तरुण पीढीका निर्माण किया जाता था। वह इस प्रकारके अनुशासनके अन्तर्गत बनाई जाती थी—

इसी प्रकारके अनुशासनके अन्तर्गत हमारे तरुण विनायक अथवा गणेश आगे चलकर नेता बने। आज हम कहते हैं कि ये देव थे; किन्तु इस ओर हम ध्यान नहीं देते कि वे कुमारसे तरुणतक किस वातावरणमें बढे। हम यहीं पर गलती करते हैं। गणेशपुराणमें तरुणोंका निर्माण किस प्रकार किया गया, इसका विस्तृत वर्णन है। वह ग्रन्थकी ही वस्तु न रहनी चाहिये। वह तो आज भी हमारे लिये मार्गदर्शन कर सकती है।

देवचरित्रोंका अभ्यास

सभी देवोंके बाल्यावस्थाके चरित्रोंका अध्ययन करने जैसा है और वे इसीलिये लिखे गये हैं कि लोग उनका अध्ययन करें। यदि वे हमारे लिये मार्गदर्शक नहीं होते तो लेखकोंने व्यर्थ ही लिखकर न रखा होता।

'यह तो देवोंका चरित्र है' ऐसा कहकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। देव अत्यधिक सामर्थ्यशाली होनेपर भी वे हमारे लिये मार्गदर्शक हो सकते हैं। वे आश्चर्यजनक कृत्य करते थे, किन्तु हम उनका अनुगमन करके कुछ तो कर ही सकते हैं ?

देवोंने जो किया उसे इसीलिये लिखा गया है कि उसमें का उत्तम भाग मनुष्य अपने लिये आदर्श मानकर रखें और तद्वत् आचरण करके स्वयंका उद्धार करें।

[लेखांक १३]

गणपती द्वारा किया गया राष्ट्रीय अभ्युत्थान

इस लेखमें राष्ट्रीय उन्नतिके किसी निश्चित कार्यक्रमपर विचार करनेका प्रयत्न किया जाएगा। अबतकके लेखोंमें भारतीय सांस्कृतिक जीवनमें राष्ट्रीय हितके विचार किस प्रकारसे अनुस्यूत होते गये, इसपर विचार किया गया था। बचपनसे लेकर तो मृत्युपर्यंत उनका समस्त जीवन ही राष्ट्रीय जीवन था। ' राष्ट्र एक पुरुष है तथा उसके शरीरमें का एक अणुजीव मैं हूं। ' ये अन्यन्यभाव उनके जीवनमें ओतप्रोत थे और वे इसी दृष्टिकोणसे अपने सम्पूर्ण व्यवहार किया करते थे। प्रस्तुत लेखमें इसीके उदाहरण स्वरूप एक पुरुषके जीवनपर दृष्टिपात करेंगे।

गत लेखमें विनायक अथवा गणेशका उल्लेख किया गया है और उनकी बाल्यकालीन शिक्षा किस प्रकारकी थी, गुरुकुलोंमें शिक्षाकी व्यवस्था किस प्रकारकी थी इसपर भी विचार हुआ है। अब हमें यह देखना है कि उन्होंने युवावस्थामें क्या क्या किया। अतएव इस लेखमें गणेश-चरित्र पर ही विचार किया जाएगा।

यह तो सर्वविदित है कि गणेश शंकरपार्वतीके पुत्र हैं। कैलास इनकी राजधानी थी और भूतस्थान (आधुनिक भूतान) इनका राज्य था।

गणपतीके जन्मसे पूर्व इस भूत जातीको कोई सन्मान प्राप्त नहीं था। यज्ञमें सम्पूर्ण देवता आकर बैठते थे; किन्तु वहाँ भूत जातीके लोगोंके लिये आकर बैठना भी कठिन था। आजकल जिस प्रकार कट्टर सनातनी हिन्दु अस्पृश्योंके प्रति व्यवहार करते हैं उसी प्रकार देवजातिके लोग भूतजातीके प्रति व्यवहार किया करते थे। वास्तवमें भूत जातीके लोगोंका रहन सहन भी गन्दा ही था। इस जातीपर शङ्करका राज्य था। और इसी शङ्करके घर गणेशकी उत्पत्ति हुई।

गणेशने ८-१० वर्षकी अवस्थामें ही अपनी जाती एवं राष्ट्रकी संगठन शक्ति बढाकर इतनी उन्नति कर दिखाई कि जिसके कारण उस जातीकी प्रतिष्ठा तो बढी ही, किन्तु उसीके साथ गणपतीको अग्रपूजाका स्थान भी प्राप्त हुआ। वह सन्मान आजतक भी चला आरहा है।

एक राष्ट्रका इतनी अल्प अवधिमें इतना उन्नत हो जाना सभीके लिये उद्बोधक सिद्ध होगा। यह कार्य संगठन द्वारा उन्होंने कर दिखाया। यह संगठन कार्य उन्होंने किस प्रकार कर दिखाया इसका विचार यहाँ करना है। सर्व प्रथम हम यह देखेंगे कि गणपतीने स्वयकी उन्नति किस प्रकार की।

गणपतीका शरीर

गणपती शरीरसे सुन्दर नहीं था। वर्ण गौर था; किन्तु जिसे सौन्दर्य कहा जा सकता है वह बात उनमें न थी। नाक बहुत मोटी थी, शरीर ओबडधाबडसा था, गौरवर्ण मिश्रितलाल रंग था। किन्तु हँसते हुए बातचीत करना और स्नेहसिक्त व्यवहार रखना यह उनमें बहुत बडा आकर्षण था। एक पहलवान्की तरह हाथ, कन्धे, गर्दन, पेट जांघ तथा अन्य अवयव खूब हृष्टपुष्ट थे। वैसे गणेश मल्लविद्यामें भी निष्णात थे ही।

शरीर पहलवानों जैसा किन्तु निरोगी था। किसी विचार करनेके अवसरपर एक पैरकी पालथी मारकर दूसरा पैर बिना पालथी मारे सीधा मोडकर और उसपर हाथ रखकर तथा वह सिरसे सटाकर बैठनेकी उनकी आदत थी।

आकृति भव्य, रहनसहन सीधासाधा और विचार उच्च, इसी प्रकार विद्या और बुद्धि अगाध होनेके कारण दूसरोंपर प्रभाव पडता था और ऐसे इस व्यक्तित्वपर लोग मुग्ध भी थे।

गणेशके शस्त्र

युद्धके समय गणपती जिन शस्त्रोंका उपयोग करते थे वे ये थे- 'गदा, खड्ग, शूल, त्रिशूल, चक्र, धनुष्य, मुद्गर, वज्र, कुठार, दिव्य अस्त्र, खट्वाङ्ग, पाश, तुङ्गशक्ति, दण्ड, शर, गजदन्त आदि' इसके अतिरिक्त शंकरके पास रहनेवाले पशुपत आदि शस्त्रास्त्र इसके पास रहते ही थे। युद्ध करते समय शस्त्रचालनकी निपुणताका खूब अच्छा प्रमाण मिलता था।

युद्धमें गणेशको जीतना असम्भव था। षडानन जिस प्रकार सेना संचालनमें निपुण था और इसीलिये जिसे 'सेनानी' यह पदवी प्राप्त थी। उसी प्रकार इसे भी सेनानी पद प्राप्त था। परन्तु षडाननके विषयमें यह उल्लेख प्राप्त नहीं होता कि उन्होंने राष्ट्रका संगठन किया हो। किन्तु गणेशके लिये यही बात प्रसिद्ध है।

गणेशकी बुद्धिमत्ता सुप्रसिद्ध थी। जो कार्य दूसरोंके लिये असम्भव होता था उसीको वह अपनी तीव्र बुद्धिसे सरलतापूर्वक कर डालता था। दूरदर्शिता, प्रज्ञा, बुद्धि, धारणा आदिका उसमें उत्तम सम्मिलनसा था।

गुप्त योजना

गणेशने अपनी जातीका संगठन करके उसे सन्मानका स्थान प्राप्त करा दिया। इसके लिये जिन बातोंका आयोजन उसे करना पडा अथवा शत्रुनाशनके लिये जिन उपायोंका आश्रय लेना पडा उन सबको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए उन्हें गुप्त रखना आवश्यक रहता है। गणेशकी योजनायें इसी प्रकार गुप्त रहा करती थीं। वे तभी सामने आती थीं जब उनका समय निश्चित कर दिया जाता था। अर्थात् गणेशका मन योजनाओंको गुप्त रखने योग्य था। व्यर्थकी धूमधाम और प्रदर्शन इसके जीवनमें नहीं था।

गणेशकी विद्वत्ता

गणेश विद्वान भी खूब था। अनेक शास्त्रोंमें उसकी गति थी, वह ग्रन्थलेखक भी था, ग्रन्थतत्वज्ञ भी था और शास्त्रमर्म जाननेमें कुशल भी था। 'गुरुविद्या, गुरु-शास्त्रकृतोद्यम' आदि पदवियां उसे प्राप्त थीं। पाख-ण्डोंका खण्डन करना एवं शास्त्र संदर्भोंको यथावत् लगानेमें वह प्रवीण था।

ब्रह्मविद्यामें वह परिपूर्ण था। वक्तृत्वकलामें वह उत्तम वक्ता था। इसलिये उसकी योजनायें अध्यात्म तत्त्वपर आधारित रहती थीं। वे निरी भौतिक तत्त्वोंपर निर्भर न थीं। योजनाओंका निर्माण सदैव अध्यात्मकी भूमिकापर हुआ करता था।

श्रेष्ठ गणितज्ञ

वेद शास्त्रोंमें प्रवीण, इतिहासका मर्मज्ञ और साथ ही गणित एवं खगोल विद्यामें भी यह विलक्षण रूपसे प्रवीण था। इसलिये इन्हे 'गणक' 'गणितागमसारवित्, गणक श्लाघ्य' इत्यादि सम्बोधनोंसे सम्मानित किया जाता था। गणित शास्त्रज्ञोंकी यदि कोई सभा होती थी तो उसमें इन्हींको अध्यक्ष स्थान मिला करता था। इस प्रकारका प्राविण्य गणितशास्त्रमें इसे प्राप्त था। यही विद्या इसे अपनी जातीकी समुन्नतिके समय उपयोगी हुई।

इन सब बातोंके अतिरिक्त वैद्यक शास्त्रमें एवं रोगोंकी चिकित्सा करनेमें भी वह कुशल था। गर्भरोग चिकित्सामें तो इसकी निपुणता अत्यन्त प्रशंसनीय थी। यह योगी एवं गायनपटु भी था।

संक्षेपसे इतनी योग्यता गणेशकी थी। जिस समय विद्या सीखकर स्नातकके रूपमें वह लौटा और उसने देखा कि मेरे देशका दुनियाँमें कोई सम्मान नहीं है, मेरी जाती-को कोई पूछता नहीं है तो उसने अपने राष्ट्रके सम्मानको बढानेकी योजनायें बनाई और उन्हें कार्यरूपमें परिणत किया।

मनुष्य गणनाका उपक्रम

प्रथमतः उसने अपने राष्ट्रकी मनुष्य गणना की। यह गणना जातिशः एवं व्यवसायकी दृष्टिसे की गई। इस समय इसकी गणितशास्त्रज्ञताका खूब उपयोग हुआ। इस मनुष्य गणना द्वारा उसने इस बातका पता लगाया कि मेरी जाती की लोक संख्या कितनी है तथा उसमें स्त्री, पुरुष और व्यवसायकी पृथक् पृथक् संख्या भी ज्ञात की गई। 'गण' का अर्थ ही गणना किये हुए लोग ऐसा होता है। 'भूतोंके गण' अथवा 'भूतगण' महादेवके भूतगण इत्यादि जो नाम प्रसिद्ध हैं वे इस मतगणनाके कारण ही। मेरे भूतान देशमें अमुक व्यवसायमें इतने लोग प्रवीण हैं, इत्यादि ज्ञान इस गणना द्वारा ही उसे था। राष्ट्रकी उन्नतिके लिये इस प्रकारकी गणना लाभदायक रहती है। इससे शासकों-को यह पता लग जाता है कि किस व्यवसायकी कितनी उन्नति है, कितने बेकार है, किन्हे प्रोत्साहनकी आवश्य-कता है- आदि। यदि इस बातका ज्ञान न होगा तो राष्ट्र-की उन्नतिके लिये कोई भी कुछ नहीं कर पाएगा। गण-पतिने मनुष्यगणनाद्वारा इन सब जानकारियोंको एक-त्रित किया। गणेश, गणपति आदि नाम उन्हें इसके पश्चात् प्राप्त हुए हैं और वे आजतक भी प्रचलित हैं। आज हम इसका त्यौहार मनाते हैं, किन्तु यह विचार नहीं करते कि उसने अपने जीवनमें क्या कार्य किया!

गणोंके मण्डल बनाये

लोकसंख्याकी गणना हुई। किस व्यवसायमें कितने लोग हैं, इसका पता लगा और उनकी आर्थिक स्थिति सामने आनेपर गणोंके मण्डल स्थापित किये गये। प्रत्येक गण-मण्डलका एक अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। इस प्रकार गण, गणमण्डल एवं गण-मण्डलाध्यक्षकी योजना पूर्ण हुई। अपने अपने गण-मण्डलके विकासके दायित्वका भार अध्यक्षपर आया और उन्होंने तदनुसार कार्य आरम्भ कर दिया।

गणनायक और विनायक

गण समुदायपर एक 'नायक' होता था और अनेक नायकों पर एक 'विनायक' नियुक्त रहता था। व्यवसाय एवं प्रदेशोंकी अनुकूलताके हिसाबसे 'गण, गणमण्डल, गणमण्डलाध्यक्ष, नायक, विनायक, पति, नाथ' आदि पद निश्चित किये हुए थे। अपने अपने अधिकारके क्षेत्रका उत्तरदायित्व उस उस पदाधिकारीपर रहता था। इस प्रकारकी यह राष्ट्रीय योजना सम्पूर्ण राष्ट्रमें जारी हुई।

एकबार इस प्रकारकी योजना आरम्भ होजाए और तदनुसार कार्य होने लगे तो साल छः महिनेमें ही सारे

राष्ट्रमें नवचैतन्यका संचार हो सकता है। यही स्थिति इस छोटेसे राष्ट्रकी हुई।

आलयोंका प्रारम्भ

वहाँ तहाँ नाना प्रकारके आलयोंका प्रारम्भ होगया। ग्रन्थालय, औषधालय, शिक्षणालय आदि नामके ये 'भूतालय' स्थापित हुए और उनके कार्य अपने अपने आलयोंमें जनताकी उन्नतिके लिये प्रारम्भ होगये। इसमें महत्वकी बात यह थी कि एक भी मनुष्य लापर्वाह न रहे ऐसी व्यवस्था हुई। अतः इस राष्ट्रके प्रत्येक मनुष्यको ऐसा लगा कि राष्ट्रीय सरकारको मेरी चिन्ता है, वह मेरा हित करनेके लिये कृतसंकल्प है।

गुण्डोंको दण्ड

यदि कोई नागरिक उन्मत्त होजाए, गुण्डागिरी करने- लगे, राज्यका अनुशासन भङ्ग करे तो उसके नियन्त्रणके लिये 'गणगर्वहर्ता, दण्डनायक' आदि अधिकारियोंकी नियुक्ति की हुई थी। इस कारण अनुशासनका पालन व्यवस्थित रूपसे होता था। अनुशासन भङ्ग करनेवालेको दण्ड दिया जाता था। अतः कठोरतापूर्वक अनुशासनका पालन होता था।

अनुशासन और सामर्थ्य

अनुशासनके बिना संगठन नहीं और संगठनके बिना उन्नति संभव नहीं, इस बातको सामने रखते हुए अनुशासनका पालन न करनेवालोंको दंड देनेकी उचित व्यवस्था करके गणेशने स्वयकी दक्षताका उदाहरण प्रस्तुत किया है।

आपत्कालकी व्यवस्था

इस योजनाके साथ साथ यदि कोई बीमार होजाए तो उसे दूर करनेकी व्यवस्था, व्यवसायमें किसीको कोई असुविधा उत्पन्न होजाए तो उसे दूर करनेकी व्यवस्था, बेकारोंको उनकी योग्यतानुरूप काम दिलानेकी व्यवस्था और प्रत्येकको उसके श्रमके अनुरूप पारिश्रमिक मिलनेकी व्यवस्था गणपतीने अपने इन मण्डलों द्वारा बनाई थी।

आर्तत्राणालय, गदनिवारणालय, आदि आलयोंका निर्माण प्रत्येक मण्डलोंमें किया गया था और उनका नियन्त्रण केन्द्रीय कार्यालय द्वारा हुआ करता था। इस प्रकार सम्पूर्ण जनताका सम्बन्ध प्रजाके साथ आता था। इस कारण प्रजा एवं सरकारमें अपनत्वका भाव उत्पन्न होगया था और प्रजाजनोंमें एकदम जागृति उत्पन्न होगई।

सैन्य-रचना

इसके बाद गणपतीने अपनी सेनाका निर्माण किया और षडाननने सैन्य विभागका आधिपत्य स्वीकार करके इस सेनाकी शक्ति खूब बढा ली।

इस ओर सैन्यकी वृद्धि हुई और कठोर अनुशासनका पालन होनेके कारण उसकी शक्तिमें भी वृद्धि हुई। एक ओर गटशः व्यवसायका विभाजन हुआ, मण्डलशः सबकी व्यवस्था होने लगी और इस प्रकार जाती जागृत होकर उन्नत होने लगी।

मान्यता-वृद्धिके लिये योजना

इसके पश्चात् गणेशने अपने जातीकी मान्यता बढानेके लिये बाहरके देशोंको अपनी सेना और अपने कारीगरोंकी मदद भेजनेका उपक्रम शुरू किया। भूतजाती सशक्त, साहसी और हिंसक तो थी ही अब उसे संगठनकी शक्ति भी प्राप्त होगई। इस प्रकार इस जातीका पराक्रम अद्वितीय माना जाने लगा। 'वीरभद्र' के पराक्रमकी जितनी प्रशंसा की जाए उतनी थोडी ही है।

इन्द्रादि देव भूतजातीकी अपेक्षा बहुत सुधरे हुए और प्रगतिशील थे; किन्तु इस कारण उनमें विलासिता भी बहुत कुछ घर कर गई थी। इन्हे किसी न किसी सैनिक-की अपेक्षा थी ही। वे इस समय प्राप्त हुए और षडाननके सैनिकीय नेतृत्वमें वीरभद्रकी सेनाने प्रखर पराक्रम दिखाकर वे इन सबके आदरके पात्र भी बने। सभी देवोंको इस समय गणपतिने अपने लोगोंकी सहायता दी और उसका परिणाम यह हुआ कि इस जातीकी ओर- जिसे कभी वे हीन और तुच्छ दृष्टिसे देखते थे उन्हींकी ओर- वे अत्यन्त आदरभाव रखने लगे !!

अग्रपूजाका मान

ये ही कारण थे जिनसे कि गणपतिको अग्रपूजाका मान मिला और आजतक भी जो अविच्छिन्नरूपेण अवस्थित है। गणपति यदि अनुकूल रहे तो समस्त विघ्नोंका नाश हो जाता है और यदि वह प्रतिकूल हुआ तो अनेक विघ्न

उत्पन्न होजाएँगे। अतएव इसे 'विघ्नहर्ता और विघ्नकर्ता' कहा जाने लगा। शक्तिमान् जो होगा वही विघ्नोंको दूरकर सकता है अथवा उन्हें उत्पन्न भी कर सकता है; यह बात सबके लिये ध्यान देने योग्य है।

देवोंका अनुकरण

'जैसा देवोंने किया वैसा ही हम करें' ये वचन वैदिक कालके ऋषियोंके थे और इसके अनुसार आचरण करके वे वैयक्तिक एवं सामूहिक उन्नति भी प्राप्त किया करते थे। आज भी गणपतिका राष्ट्रीय संगठनका यह तत्व इतना सरल एवं इतना बोधप्रद है कि वह कोई भी अपने राष्ट्रकी उन्नतिके लिये आचरणमें लासकता है। हिन्दु जन घर-घर और गलीगलीमें गणेशोत्सव करेंगे, मोदक बनाकर खायेंगे, और स्वयंको गणेशका भक्त भी बताएँगे; किन्तु गणपतिने जिस प्रकार अपने राष्ट्रकी उन्नति की उसे समझनेका प्रयत्न नहीं करेंगे। गणपतिके कार्यक्रमको यदि हम अपने राष्ट्रमें आरम्भ कर दें तो हमारा राष्ट्र उन्नत हो सकता है और उसे विश्वमें अग्रपूजाका सन्मान भी प्राप्त हो सकता है। किन्तु केवल मोदक खानेके अतिरिक्त और कुछ करना ही नहीं है वहाँ ये कार्यक्रम पनपेंगे किस प्रकार? इसके लिये तो 'अविश्रान्त परिश्रम' करना चाहिये; किन्तु यह सब करे कौन?

केवल गणपति ही नहीं अपितु सहस्त्रावधि देव और देवताओंके जीवनचरित्र आज भी हिन्दुओंके लिये बोधप्रद सिद्ध हो सकते हैं। पुराणोंमें इन सबके चरित्र इसी हेतुसे लिखे हुए हैं। गणेशका यह कार्यक्रम गणेश पुराणमें है। गणेशकी दो नामावलियाँ प्रसिद्ध हैं। वे सब इस कार्यक्रमकी दृष्टिसे मनन करने योग्य हैं। एतद्विषयक समस्त साहित्य हमारे पास है और वह अत्यन्त स्पष्ट एवं सर्वविदित है।

राष्ट्रकी जनगणना व्यवसायकी दृष्टिसे करनी चाहिये, उसके गण करने चाहिये, मण्डल बनाने चाहिये, उनपर निरीक्षक रखने चाहिये और उनकी उन्नतिके लिये जो कुछ भी आवश्यक हो वह सब करना चाहिये तथा सरकारको ऐसी व्यवस्थाके लिये पूरी सहायता करनी चाहिये। यह कार्य अधिक व्ययसाध्य न होकर अति सुकर है।

हमारी संस्कृतिने उन्नति एवं संगठनका यह कितना बडा कार्यक्रम हमारे सामने रक्खा है! किन्तु यह सब है उसके लिये जो इसे सचमुच करना चाहे।

अनुवादक-महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

मायाके कुहरेको छितरा दिया

लेखक— श्री. ऋषभचन्द

वह कौनसा अशुभ दिन था जब कि मायाका कुहरा भारतीय जीवनके व्योममें अन्धकार छाता हुआ आया था? वह कौनसा तमसावृत दिन था जब कि प्राचीन समता संग हो गयी, दृष्टिकोणकी प्राचीन विशालता मेघाच्छन्न हो गई और भारतीय संस्कृतिकी प्राणशक्ति तथा नमनशीलता धीमी पड़ गयी और क्षीण होने लगी? ऐसा किस तरह हुआ कि जीवनके तत्त्वोंपर प्रायः ग्रहण सा लग गया और दरिद्रता और गन्दगीके द्वारा नग्न आत्माकी ओर पलायन करना मनुष्यकी सर्वोच्च सिद्धि माना जाने लगा?

वैदिक युगके जीवनपर मायाकी छाया नहीं पड़ी थी। उस कालमें जीवन मुकुलित हो रहा था, वह था उत्फुल्ल एवं उज्ज्वल, वह था शक्तिमान तथा विस्तारशील, वह था उत्सुकता, आश्चर्य, आनन्द तथा स्वतंत्रतासे परिपूर्ण। विचारके नायकगण, सत्यके द्रष्टागण, जीवनको भगवती ज्योतिकी सिद्धि तथा अभिव्यक्तिका क्षेत्र मानते थे, और इस क्षेत्रको विस्तृत, आलोकित तथा समृद्ध करनेके लिये महत्तर शक्तियों और मानव प्रकृतिकी शक्तियोंके बीच सतत संसर्ग चलता रहता था। जीवनको अधिकाधिक महत्तर पूर्णता तथा अधिक प्रभूत प्रस्फुटनके लिये तैयार करनेके लिये उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूतियां जीवनपर लौटकर आती थीं। इस गौरवपूर्ण युगमें प्रत्येक पगपर हम देखते हैं एक स्वाभाविक सरलता एवं पवित्रता, भगवानके हस्त-क्षेपमें विश्वास और भरोसा। उस समय मायाका अर्थ भ्रम या मरीचिका नहीं, था, वरन् वह था ज्योतिकी माता, विश्वके स्वामीकी परमा सृष्टिकारिणी शक्ति।

तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे
सक्म्यं गोः। अन्यदन्यदसुर्यं वसाना नि
मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥

ऋग्वेद० ३।३८।७

अरुरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति
भुवनानि वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य
मायया नृचक्षस पितरो गर्भमा दधुः ॥

ऋग्वेद. ९।८३।३

उस सुदूर युगमें, मानव संस्कृतिके उस अरुणोदय कालमें जीवनकी नींवें डाली गयीं, विशाल और गहरी और एक विकसित होती हुई संबोधिके प्रकाशमें उच्चतम आदर्शोंकी कल्पना की गई, उनको रूप दिया गया, और आर्य जातिके विकासक्रमकी सामान्य राहकी रूपरेखा खींची गई। भारतीय संस्कृतिके समूचे धाराप्रवाहको रूप देनेवाले और शासित करनेवाले जो प्रमुख सृजनात्मक विचार हैं वे ऋषियोंकी जिह्वासे विद्युत्‌की भांति प्रगट हुए, और वे ऋषिगण कोई जीवनसे अलग हटे हुए सन्यासी नहीं थे, वरन् वे थे समाजके नेता और संगठन कर्ता, और वे थे उसकी नियतिके सुदूरदर्शी निर्माणकर्त्ता।

" पञ्चजना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत
ये यज्ञियासः। पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वं
हसोऽन्तारिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः
पथो रक्ष धिया कृतान्। अनुल्बणं वयत जोगु-
वामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥ .

सतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्या-
भिरमृताय तक्षथ। विद्वांसः पदा गुह्यानि
कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः ॥ "

(ऋग्वेद १०।५३।५।६।१०)

" पंचजा, (जिस प्रकार दो बार जन्मे हुओंके लिए 'द्विज' शब्द है उसी प्रकार मूलमें 'पञ्चजना' का तात्पर्य पांचबार जन्मे हुए जनोंसे है, उसी शब्दके लिए हम 'पंचजा' व्यवहार कर रहे हैं), प्रकाशसे जन्मे हुए

और अर्चनीय जन, आप मेरा यज्ञ स्वीकार करें, पार्थिव विपदाओंसे हमारी रक्षा पृथिवी करे, दैवी विपदाओंसे हमारी रक्षा अंतरिक्ष करे। जगतके बीच तने हुए चमकते तन्तुका अनुकरण करो, 'धी' के निर्मित ज्योतिष्मान पंथोंकी रक्षा करो, मानव बन जाओ, देव-जातिका सृजन करो। . तुम सत्य-कवि हो, तुम चमकते शूलोंकी धार तेज करो जिनसे तुम अमरत्वके मार्गका रक्षण करते हो, तुम उन सीढियोंका निर्माण करो जिनसे देवतागण अमरत्वतक जा पहुंचे।"

आर्य संस्कृतिका मूलमंत्र इन्हीं शब्दोंमें है "देव-जातिका सृजन करो।" पृथ्वीको माताके रूपमें माना जाता था और अध्यात्म-रसिकगण, जिनकी चेतना आत्माके सूर्य-लोकोंमें भ्रमण करती थी, पार्थिव जीवनमें ही समृद्धिशाली तथा पूर्ण पूर्णताकी खोज करते थे।

"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। . .
निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं
पृथिवी ददातु मे।... ..
ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते॥
अथर्व वेद १२।१।१२।४७।५६।

"मैं पृथ्वीका पुत्र हूं, भूमि मेरी माता है...वह मुझे अपने बहुविध वसु मणि दे, अपने गुप्त धन दे...हे पृथ्वी! हम तुम्हारी सुन्दरताकी बात कहें जो कि तेरे ग्रामों, अरण्यों सभाओं एवं संग्रामोंमें है।"

आत्माकी निःसीमता एवं अमरतामें पूर्ण स्वतंत्रता, और पृथ्वीपर गम्भीर तथा समृद्धिशाली जीवन, यह था आर्य संस्कृतिका लक्ष्य, इसमें थी स्वर्ग और गृह दोनोंके प्रति मलाई। जातिके जीवनके उन्मुक्त प्रस्फुटन पर मायाका कुहरा उस समय नहीं छाया था, उस कालमें आत्मा और उसके अभिव्यक्त होते हुए पदार्थ जड तत्व दोनोंमें अजस्र आनन्द पानेकी खोज की जाती थी।

'नः .....देव। दितिं च रास्वादितिमुरुष्य॥
ऋग्वेद ४।२।११

आत्मा और जड, असीम और ससीम, एक और बहु, सबोंका एक, व्यापक दृष्टिमें आलिंगन किया जाता था, और अमर ज्योतिमें पूर्ण जीवन व्यतीत करना मानव जीवनका उच्चतम लक्ष्य माना जाता था।

उपनिषदोंके कालमें जीवन हुआ अधिक विस्तरणशील, समृद्ध, सबल तथा तेजस्वी रूपसे सृजनकारी। समाजमें आये कई रंग, समाजमें जटिलता आई, और इसके बहुविध अंगोंके बीच पुरातन आध्यात्मिकता उर्वरा गंगाकी भांति बहने लगी। ज्ञान तथा शक्ति साथ साथ चलते थे और एक सहज पवित्रता आत्माके बहुविध तथा निर्भीक प्रयासों को सहारा देती थी। उस समय इन प्रयासों पर अन्धकार लाने और इन्हें पंगु करनेवाली माया या जगत मरीचिका-की कोई धारणा नहीं थी। मायाको माना जाता था प्रकृति -मायाम् तु प्रकृतिं विद्यात्-और मायाके स्वामीको विश्वका परम प्रभु। जगतको माना जाता था स्वयं ब्रह्म ब्रह्मवेदम् देश कालमें अपना विस्तार किये हुए ब्रह्म, और अतएव वास्तविक, स्वयं ब्रह्मके जैसे वास्तविक, यद्यपि सापेक्षिकतः तथा परिवर्तनशीलतः वास्तविक।

"तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्।
मुण्डक उपनिषद् १।१।८

तपसे परब्रह्म अपना विस्तारण करते हैं और ब्रह्मसे अन्न उत्पन्न होता हैं और अन्नसे प्राण, मन, सत्य तथा जगत उत्पन्न होते हैं और कर्मोंमें अमरत्व है।

'कर्मसु चामृतम्' कर्मोंमें अमरत्व यह प्रमाणित करता है कि जीवनके सारे कल्याणकारी कर्मोंको केवल हर्ष और स्वतंत्रतासे स्वीकार ही नहीं किया जाता था, वरन् जीवनमें उच्चतम तथा पूर्णतम सिद्धि एवं पूर्णता लानेके लिये उन्हें अपरिहार्य माना जाता था।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
ईश उपनिषद् २

इस जगतमें कर्म करते हुए सौ वर्षतक जीनेकी इच्छा करनी चाहिए। और किसी तरह नहीं, केवल ऐसा करनेसे ही ऐसा होता है कि मनुष्यमें कर्मकी लिप्तता नहीं रहे।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सो विद्याग्रन्थिं
विकिरतीह सोम्य॥ मुंडक उपनिषद, २।१।१०

" विश्वमें यहां जो कुछ भी है, कर्म, तप, ब्रह्म, परम अमृत, यह सबकुछ आत्मा है। हे सौम्य, जो कोई अपने हृदयकी गुहामें इस गुप्त चीजको देख लेता है, वह इसी शरीरमें अविद्याकी ग्रन्थिको काट डालता है। "

किन्तु जीवनमें दिव्य संसिद्धिके सिद्धान्तके इस व्यापक तथा सृजनकारी सामंजस्यके बीच, एक सुर, आरम्भमें सुदूर और धीमा, किन्तु ज्यों ज्यों बढता गया धीरे धीरे जोर पकड़ता हुआ, अपनी अलग तान छेड़ने लगा और अपनी स्वतंत्रताका दावा करने लगा। यह था जगतके परित्यागका सुर, जिसे याज्ञवल्क्यके शक्तिमान व्यक्तित्वने इन्द्र तथा प्रजापतिके नेतृत्वके प्रभावपूर्ण सामंजस्यके विरोधमें छेड़ा। किन्तु इसने उस समयके सौष्ठव एवं सामंजस्यमें खलल नहीं डाली। और फिर, यह बात भी है कि जगतको अवास्तविक कहकर उसे बिलकुल अस्वीकार कर देनेवाला कोई सम्पूर्णतया नकारात्मक दार्शनिक विचार भी उस समय नहीं था। सन्यासकी वृत्ति आई अधिकतर सापेक्षिकतामय जीवनकी संगत परिणतिके रूपमें, न कि जीवनसे पीछे हटने या पलायन करनेके रूपमें,- जातिकी नसोंमें इतनी प्रचुर प्राणशक्ति प्रवाहित हो रही थी कि वह जीवनके उच्चतम लक्ष्यकी ओर पीठे नहीं मोड सकती थी, और वह लक्ष्य था " कर्मसु चामृतम् "। किन्तु फिर भी, यह तो मानना ही होगा कि जातीय चेतनाके सुदूर प्रान्तोंमें कहींपर जीवनकी उमड़ती हुई विजयिनी तरंगोंके सामने भयका प्रथम प्रकम्पन हुआ, कहींपर एक दुर्बलताका प्रारम्भ हुआ, कहीं पर भौतिक जगतकी जंजालकारी शक्तियोंसे आत्माके अलग हटने और अपने आपको बिलकुल पृथक् कर लेनेका एक प्रारंभ हुआ। किन्तु, जैसा कि मैंने कहा है, यह चेतनाकी किसी सुदूर तहमें हुआ और जातिके विचार तथा कर्ममें उसने तबतक कोई परिणाम उत्पन्न नहीं किया था। जीवन बढ़ता चला, सतेज तथा स्वच्छ, और उससे आत्माके कई रत्न उद्भूत हुए। याज्ञवल्क्य, जनक, अजातशत्रु, आरुणि, गार्गी, मैत्रेयी, इन सबोंने जातिकी अग्रगतिमें, इसकी सांस्कृतिक विशेषतामें और इसके वर्द्धित होते हुए सामाजिक संगठनकी समृद्धि तथा पूर्णतामें योगदान किया।

धर्मयुगमें, रामायण और महाभारतके भव्य, बहुरंगीन युगमें, भारतमें सामाजिक जीवनने एक महत्तर समृद्धि, विचार तथा कर्मकी एक अधिक फलवती जटिलता और सर्वतोमुखी बौद्धिक प्रगति प्राप्त की। आध्यात्मिक दृष्टिकी प्राचीन पूर्णताके स्थान पर जीवनके नैतिक, सौन्दर्य विषयक तथा जीवन संबंधी मूल्य अब अधिक ध्यान पाने लगे और प्रगट होने लगे। और फिर भी, धर्मके रूपमें जो कि मनुष्यकी महत्तर बुद्धिमें आध्यात्मिकताकी उतरी हुई मूर्ति है, आध्यात्मिकताका परम आधिपत्य चलता रहा और वह एकमात्र सृजनकारिणी, समन्वयकारिणी तथा संहतकारिणी शक्तिके रूपमें कार्य करती रही। यहां भी मायाका पंगुकारी जादू नहीं आया है। रामायणके युगमें दशरथ, जनक राम, भरत और महाभारतके युगमें कृष्ण, भीष्म, युधिष्ठिर अर्जुन, ये सब समाजके वर्द्धित होते हुए भवनको सहारा देनेके लिए शक्तिमान स्फटिक स्तम्भकी भांति खड़े हैं। सब जगह है समृद्धि, प्रगति और बहुलता, और राष्ट्रकी क्षमताओंका विजयी प्रसार। परित्यागका सुर शायद थोड़ा और जोर पकड़ चुका है, किन्तु फिर भी पहलेकी भांति, इसके साथ जगतकी अवास्तविकताकी कोई तान नहीं है। शांति कुटियों और शहरों तथा नगरियोंके कोलाहलपूर्ण जीवनके बीच अबाध संसर्ग चलता था और बादके समयमें जातिकी प्राणशक्तिके ज्वारको ध्वंस करनेवाला, जगतको अस्वीकार करनेवाला जो सिद्धांत आया, उस युगमें वैसा कोई सिद्धांत पानेकी खोज हम व्यर्थ ही करते हैं।

बौद्धिक तथा सामाजिक निर्माणकी दिशामें महत् प्रयासोंके इस युगसे हम आगे बढ़ने और पीछे हटनेकी विभिन्न स्थितियोंके बीचसे गुजरते हुए, दर्शनोंको पद्धति बद्ध और नियमोंको श्रृंखलाबद्ध करते हुए, प्राचीन समन्वयको विचूर्ण करते हुए, सन्यासोंके आदर्शको अतिशय महत्व देते हुए, चतुर्वर्णोंके आश्रयको संकीर्ण श्रेणियोंमें आबद्ध करते हुए और इसके परिणामतः संस्कृतिकी सामान्य अवनति होते जानेकी दशासे गुजरते हुए, उस युगमें पहुंचते हैं जब कि प्राचीन संतुलनका जो कुछ भी अवशेष था उसे एक उग्र विभाजन ने भंग कर दिया, और जातिको परस्परमें विभाजित करते हुए ज्योति और जीवन दोनों ध्रुवोंके चुम्बकोंकी भांति खड़े हो गये। यही था बौद्ध धर्मका काल।

बौद्ध धर्म आया युगात्माकी पुकारके उत्तरमें, किन्तु

उस समयकी बुराइयोंका इलाज करनेकी उत्सुकतामें, उस समयकी फैली हुई विषमता और नग्न बाह्याचारकी वृत्तिको ठीक करनेकी उत्सुकतामें, इसने जातीय संस्कृतिकी जडपर ही कुल्हाडी मार दी और एक भव्य नैतिक इमारतके भारके नीचे आर्य आध्यात्मिकताकी स्वयं अन्तरात्माको जीवित गाडनेको हो गई, क्योंकि आर्य आध्यात्मिकता अपनी अन्तरात्मा भगवान, उपनिषदोंके ब्रह्म या परम पुरुष, गीताके पुरुषोत्तमके बिना भला है ही क्या ? सामाजिक सुधारके क्षेत्रमें बौद्ध धर्मने विपुल कार्य किया, उसने भारतीय जीवनकी आधारगत पवित्रता तथा सरलताको पुनः प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न किया, उसने धर्मके अन्दर एक उदार जनतंत्रका समावेश किया, किन्तु उसने जीवनके प्राचीन सामंजस्यको भंग कर दिया और ईश्वरको निर्वासित कर डाला। अनित्य, नश्वरता, दुःख, और अनन्त निःसारता या किसी आंतरिक सारका अभाव,-ये जो कि अज्ञानके जीवनकी बाहरकी छापें हैं, इनमें अतिशय रूपसे संलग्न बौद्धधर्म बाह्य प्रवाहको सहारा देनेवाले मूलगत, अमर आनन्दको नहीं देख पाया, वह आनन्द जो कि जैसा प्राचीन द्रष्टा जानते थे, अज्ञानकी शक्तियोंको जीतने और सृष्टिमें अभिव्यक्त होनेका उद्यम कर रहा है। जीवनसे ईश्वरको निर्वासित कर डालनेमें इसने अपनी जन्मभूमिसे अपने आपको ही निर्वासित कर डालनेकी राह तैयार कर डाली।

इस प्रकार भारतके व्योममें मायाका कुहरा क्रमशः विस्तारित होने लगा। उस समय इसका नाम माया नहीं पडा था, इसे कर्म कहा जाता था, किन्तु जीवनपर इसका जो अवसादकारी प्रभाव पडा उसकी सीमा नहीं बांधी जा सकती। यह राष्ट्रकी प्राणशक्तिके स्रोतोंको सुखा डालने लगा और उसकी " चेष्टा " को पंगु करने लगा। और फिर भी यह विरोधाभास है कि बौद्धधर्मके अवसादकारी प्रभावके बावजूद भी प्राचीन प्राणशक्ति तथा सृजनात्मक शक्तिका एक विशाल भंडार बचा रहा जो कि कला और विज्ञानमें, दर्शन और साहित्यमें, राजनीति और समाजशास्त्रमें और जीवनके अधिकतर विभागोंमें प्रचुर आश्चर्य उत्पन्न करता रहा। वहां भी बौद्धधर्मकी कठोर दार्शनिक निष्पत्तियों और उसके वेद खंडनके विरोधमें विद्रोहका एक आन्दोलन प्रारंभ हुआ, किन्तु समग्रतः वह युग एक क्षीणकारी कर्मवादकी छायामें व्यतीत हुआ।

तब आये शंकराचार्य, ब्रह्मके वीर पुजारी, प्राचीन एकेश्वरवादके पुनः प्रतिष्ठाता और ब्रह्मसूत्रके दर्शनके विस्फोटक व्याख्याता। जातिकी चेतनाको " एक " के सत्यकी ओर, वेदों और उपनिषदोंके " एकमेवाद्वितीय " के सत्यकी ओर पुनः लेजानेके अतिशय उत्साह और जोशमें उन्होंने उसे उसके " बहुत्व " से विहीन कर डाला, और वह " बहुत्व " उनके द्वारा भ्रान्तिका नाम पानेपर भी अपनी दृढ वास्तविकतासे उन्हें चिढाता रहा। कर्मके स्थानपर माया और जंगलकी पुकार और सन्यासीके चोलेकी पुकार सहस्रों ध्वनियोंमें गूंज उठी। निश्चल निष्क्रिय ब्रह्म पुनः प्रतिष्ठित हुए, किन्तु प्राचीन अध्यात्मरसिकोंके परम पुरुष नहीं, और जगतका तिरस्कार किया गया, उसकी वास्तविकता अस्वीकार की गयी, जगत्-जीवनको निरुत्साहित किया गया और उसे दबा डाला गया। शंकरने बौद्धधर्मको निकाल बाहर तो किया, पर यह भी देखना पडा कि वह स्वयं उनके घरमें ही अपना घोंसला बना चुका है।

शंकरके समयसे भारतका व्योम कम या अधिक सदैव मायाके कुहरेसे आच्छादित रहा है। प्राचीन ऋषियोंकी पूर्ण दृष्टि और पूर्ण जीवनकी ओर फिर वापस जानेके विभिन्न शक्तिशाली प्रयत्न किये गये, किन्तु राष्ट्रकी क्षीण होती हुई प्राणशक्ति ऐसे दुष्कर प्रयासमें आसानीसे नहीं जुट सकती थी। बीच बीचमें कुछ आध्यात्मिक बलशालियोंने अकेले ही मायावादके निर्जीव, पंगु और सीमित करनेवाले प्रभावोंके विरोधमें क्रान्तिकारी शक्तिके साथ प्रतिक्रियाकी ओर राष्ट्रके मनको कई दिशाओंमें उन्मुक्त किया, किन्तु मायाके सिद्धांतका आधारगत आधिपत्य और संतुष्ट नम्रताका आकर्षण उनके लिये अत्यधिक बलशाली प्रमाणित हुए। मायाके कारण जातिके जीवनमें दुर्बलता आई, वह दासतामें डूबने लगी, उसके महत्तर आदर्श खोए गये और उसकी प्राणशक्ति अवसादग्रस्त और क्षीण हो गई।

राष्ट्रीय दुर्बलता और अनिश्चितताकी यह स्थिति हालतक चलती रही। एक ओर ज्ञान प्रेम एवं शक्तिकी पूर्णता और प्राचीन संतुलनके पुनराविष्कारकी ओर एक अदम्य खिंचाव; और दूसरी ओर विशृंखलता, अवनति तथा विघटनमें पुनः पुनः पतन। जीवनमें फिरसे प्राण देनेसे क्या लाभ यदि वह एक विपुल असत्य, दुःस्वप्न उन्माद भर ही हो। याज्ञवल्क्यने जो सुर छेडा था वह अब घर्घर नाद करने लगा,

उसने जोर पकड़ लिया, अपना आधिपत्य चलाने लगा।

राममोहन रायके आगमनसे और क्रियात्मक पश्चिमके बढ़ते हुए सम्पर्कसे मायाका कुहरा पतला पड़ने लगा और उसमें कुछ छिद्र हो गये जिनमेंसे नयी ज्योतिकी कुछ चमकें समाजके जीवनके अन्दर प्रवेश कर गईं। जीवनके मूल्य अपना दावा फिरसे घोषित करने लगे और लोगोंकी आंखें अतीत कालकी महानता और महिमाकी ओर घूमने लगीं। किन्तु निर्णायक कदम तो रंगमंच पर श्री रामकृष्णके आनेपर ही उठाया गया और भविष्यके सृजनकारी समन्वय की कुछ रूपरेखा सुदूर क्षितिज पर अंकित हुई। जिस दिन समाधिकी शांति और आनन्दमें डूबे रहनेकी चाह करनेके कारण विवेकानन्दको श्री रामकृष्णने डांट दिया वह दिन भारतमें पुनर्जन्म पाती हुई आध्यात्मिकताके इतिहासका एक महत्वपूर्ण दिन था। उन्होंने जगतमें माताके कार्यके दीप्तिमान संदेशके सम्मुख व्यक्तिगत मुक्तिके पारंपरिक आदर्शको फीका करके दिखला दिया। किन्तु फिर भी जातीय चेतना तथा जीवन पर मायाका पर्दा टंगा रहा, यद्यपि उनमें आत्माको तृप्त करनेवाले आदर्शकी संजीवनी संचारित हो गई थी।

ऐसे क्षणमें श्री अरविन्द आये पृथ्वी पर दिव्य जीवन-का और मानव प्रकृतिके मूलगत रूपान्तरका संदेश लेकर, उनकी अभ्रांत दिव्य दृष्टिने तुरन्त ही यह खोज करली कि जातिके प्राचीन द्रष्टाओंने मनुष्यकी सुसमंजस परिपूर्णताको, किस रूपमें देखा था और वे उस दिव्य परिपूर्ण-ताको सिद्ध करने और मनुष्योंके जीवनमें उसे उतारनेके कार्यमें लग गये। उन्होने आध्यात्मिक और लौकिकके अन्तरको विनष्ट कर डाला और यह घोषित किया कि हमें सारे जीवनको जड़के अन्दर भगवानकी विकासक्रमसे होती हुई अभिव्यक्तिके क्षेत्रके रूपमें अपनाना है।

"किन्तु प्राचीन प्रज्ञा" की स्थिर दृष्टिने समझ लिया था कि परमदेवको तत्वसे जाननेके लिये सर्वत्र समभावसे उसे देखना होगा अभेद बुद्धिके साथ, उनके आत्मरूपायणके वैचित्र्यकी जो आपात विरोधी लीला हो रही है, उसे श्रद्धासे ग्रहण करना होगा, किन्तु उससे अभिभूत नहीं होना होगा।

"तो हम एकदेशदर्शीय तर्कबुद्धिकी भेदबुद्धिको अलग रख देंगे जो कि यह कहती है कि चूंकि "एक" निर्वि-शेष ही वास्तविक है, इसलिए "बहु" सविशेष, भ्रम है और चूंकि निरपेक्ष सत् और वास्तविक है, इसलिये "सापेक्षिक" असत् और अवास्तविक है। यदि हम "बहु" में "एक" की खोज करते चलें तो हम वहां अनुभव और पूर्ण छटा लेकर लौटेंगे कि वह "एक" ही भूत भूतमें है, 'सर्वेषां हृदि सन्निविष्टः'।

"चिन्मय मन यदि यह देखे कि विश्व एक अवास्तविक स्वप्नमात्र है तो यह उसी प्रकार निर्व्यूढ सत्य नहीं हो सकता जिस प्रकार कि जड़ मनका यह देखना कि ईश्वर और "परात्पर" अवास्तविक स्वप्नमात्र हैं। एक दशामें तो हैं इन्द्रियोंकी प्रामाणिकतामें अभ्यस्त और स्थूल विग्रह तत्वोंको ही एक मात्र वास्तविकता समझनेवाला मन जो ज्ञानके अन्य किसी साधनका उपयोग करनेका अभ्यस्त नहीं होता या अपनी वास्तविकताकी भावनाको किसी जड़ातीत अनुभव तक विस्तृत करनेमें अक्षम होता है। दूसरी दशामें वही मन जब प्राकृत चेतनाके लोकसे चलता हुआ विदेह तत्वके सर्वातिभावी अनुभवमें चला जाता है तब वह बस सम्यक् दर्शनकी असमर्थताको संस्कार रूपसे अतीन्द्रिय लोकतक ले जाता होता है। तब उसकी एकदेशीय दृष्टिको इन्द्रियोंकी संवेदनाएं स्वप्न या कुहुक सदृश लगती हैं।" (दिव्य जीवन)

जीवनको क्षीण शीर्ण करनेवाले मायाके सिद्धांतके मूल का ऐसे प्रकाशप्रद रूपमें वर्णन करनेके बाद श्री अरविन्द मानव जीवनके तात्पर्य और मानवजन्मके महान लक्ष्यका संकेत करते हैं। "यदि अरूप ब्रह्मने रूप धारण किया है और जड़ तत्वमें अपनी चिन्मय सत्ताको विभावित किया है तो इसका तात्पर्य केवल हो सकता है चिदाभासकी सवि-शेष व्यंजनामें आत्म प्राकट्यके आनन्दका संभोग करनेके लिये। ब्रह्म जगतमें हैं प्राणके तत्वोंमें निजको प्रगट करने-के लिये। प्राण ब्रह्ममें निहित है निजके अन्दर ब्रह्मका आविष्कार करनेके लिये, अतएव जगतमें मनुष्यकी विशि-ष्टता और सार्थकता यही है कि वह विश्वचेतनाको उस लोक तक उठा ले जाता है जहां पर आत्मस्वरूपकी परिपूर्ण उपलब्धिके द्वारा रूपान्तर सिद्धि सहज हो जाती है। परम देवताको जीवनके अन्दर परिपूर्ण करना, यही है मनुष्यका मनुष्यत्व। उसकी यात्राका आरंभ होता है पशु प्राणकी विचित्र प्रवृत्तियोंसे, किन्तु दिव्य जीवनका उद्यापनही उस यात्राका शेष होता है।"

"कितनी ही ऊंची शिखर तक हम क्यों न उठ जांय,

यहां तक कि असतकी दुर्गम उत्तुंगता तक भी चले जांय, किन्तु तो भी यह अभियान व्यर्थ ही जायगा यदि हम अपने आधारको भूल जांय। निम्नतरको अपने आपके भरोसे छोड देना नहीं, वरन् हम जिस उच्चतर लोक तक पहुंच गये हैं, उसकी ज्योतिके द्वारा उसे रूपान्तरित करना, यही है दिव्य प्रकृतिका स्वधर्म। ब्रह्म है अखंड समग्रतासे पूर्णस्वरूप उनमें हैं बहु विचित्र चेतनाका युगपत् समन्वय, अतएव ब्राह्मी प्रकृतिको अभिव्यक्त करनेमें हमें भी अखंड सम्यक्, सर्वाधार एवं सर्वावगाही होना होगा।"

इन प्रेरणा देनेवाले शब्दोंमें श्री अरविन्द अपना संदेश देते हैं, जीवनमें पूर्ण ब्रह्मकी पूर्ण सिद्धिका और रूपान्तरित मानव प्रकृतिमें उनकी विशुद्ध अभिव्यक्तिका। यह संदेश हमें तुरन्त ही वेदों तथा उपनिषदोंकी गौरवमयी संस्कृतिकी व्यापक दृष्टि तथा शक्तिशालिनी प्राणशक्तिकी ओर ले जाता है और भारतके ही नहीं वरन् सारे संसारके भविष्यके लिये असीम आशासे प्रज्वलित कर देता है, क्योंकि भारतका अतीत मिश्र, यूनान या रोमके अतीतकी भांति मृत नहीं हुआ है। धडकते हुए वर्तमानमें वह अत्यन्त सजीवन तथा क्रियाशील है और महत्तर भविष्यके निर्माणके लिये अपना योगदान दे रहा है।

इस पाश्चात्य विचारका खंडन करते हुए, कि भारतकी आध्यात्मिकता दुर्बल, रक्तहीन, अव्यावहारिक और पारलौकिक रही है, और विचार तथा जीवनके क्षेत्रमें भारतकी संस्कृति कोई बडा कार्य नहीं कर सकी है, श्री अरविन्द लिखते हैं; "जब हम भारतके अतीतकी ओर दृष्टि देते हैं तब जो चीज हमारा ध्यान आकर्षित करती है...वह है उसकी विपुल प्राणशक्ति, जीवनकी और जीवनके आनन्दकी उसकी अशेष शक्ति, उसकी प्रायः अकल्पनीय जैसी बहुप्रसूवती सृजनकारिता। तीन हजार वर्षोंसे—वास्तवमें इससे बहुत अधिक समयसे भारत प्रचुर और अनवरत रूपसे, बहुलतासे एक अशेष बहुमुखीनताके साथ रचना करता रहा है प्रजातंत्रों, राज्यों और साम्राज्योंकी, दर्शन शास्त्रों, जगतकी उत्पत्तिके सिद्धांतों, विज्ञानों, मतों, कलाओं और काव्योंकी, सब प्रकारके स्मृतियों, महलों, मंदिरों और सार्वजनीन उपयोगी इमारतोंकी, सम्प्रदायों, समाजों और धार्मिक आश्रमोंकी, नियमों, विधानों और अनुष्ठानोंकी भौतिक विज्ञानों और आध्यात्मिक विज्ञानोंकी, योगकी और राजनीति और शासनकी प्रणालियोंकी, आध्यात्मिक कलाओंकी और सांसारिक कलाओंकी, व्यापारों, व्यवसायों और सूक्ष्म कारीगिरीकी, सूचीका अन्त नहीं, और प्रत्येक क्षेत्रमें क्रियाशीलताकी अतिरिक्तता जैसी चीज है। भारत रचना करता है और करता जाता है और थकता नहीं, उसके लिये इसका अन्त नहीं आता...वह अपनी भौगोलिक सीमाओंको पार करता हुआ अपना विस्तार करता है, उसके जहाज सागरको पार करते हैं और उसके वैभवकीधारा जूडिया मिश्र और रोमतक फैल जाती है। उसके उपनिवेश उसकी कलाओंका, उसके काव्यों सिद्धांतोंका प्रसार आर्चिपेलागो (यूनान और एशिया माइनरके बीचका प्रदेश) में करते हैं, उसके चिन्ह मेसोपोटामियाकी बालुओंमें पाये जाते हैं, उसके धर्म चीन और जापानको जीतते हैं और पश्चिममें फिलिस्तीन और अलेक्जेंड्रियाकी जितनी दूरी तक प्रसारित होते हैं, और उपनिषदोंके शब्द और बौद्धोंके वाक्य ईसामसीहकी जिह्वा पर प्रतिध्वनित हो उठते हैं। हर जगह, जैसे उसकी भूमिमें, वैसे ही उसके कार्योंमें, जीवनकी अतिबहुल शक्तिकी अतिप्रचुरता है।" (भारतका नवजन्म)

तो, ऐसा था अतीतका भारत, आत्माके वैभवोंमें महान् और विचार तथा कर्मके क्षेत्रोंमें भी उतना ही महान्, समृद्ध तथा शक्तिमान् तथा सृजनकारी। फिर जिस अवनतिका आरंभ हुआ, उसका कारण यदि एकमात्र नहीं, क्योंकि अन्य कारण भी थे, तो भी प्रधानतः बौद्ध शून्यवाद और शंकरके मायावादका विनाशकारी प्रभाव था। मायाने राष्ट्रको जीवनके उत्साहसे विहीन कर दिया, रचनाका उत्साह और आनन्द बुझा दिया, और स्वयं उस प्राणशक्तिको सुखा डाला जिसने कि अतीतमें उसे इतना महान् बनाया था। उसके अंतिम पतनका मार्ग इसने प्रशस्त कर दिया।

भारतकी फिरसे उठती हुई आध्यात्मिकता समस्त सत्ताकी एकता और सृष्टिके अन्दर भगवानकी इच्छा देखनेवाली पुरातन दृष्टिको फिरसे पानेकी राहपर अच्छी प्रगति कर चुकी है। मनुष्यको दिव्य बनाने और भौतिक जगतके अन्दर भगवानकी अभिव्यक्ति होनेके श्रीअरविन्दके संदेशने सदाके लिये मायाके कुहरेको छितरा दिया है। जीवनको उसके सारे मूल्यों और क्रियाओंके साथ फिरसे अपनाया जा रहा है और सर्वांगीण रूपसे अवतरित होती हुई ज्योतिकी ओर उसका मुख मोडा जा रहा है। आज जातिकी सुप्त, विश्रांत प्राणशक्तिको जगानेके लिये और पृथ्वी पर "देव जाति" के पुरातन वैदिक द्रष्टाओंका स्वप्न पूरा करनेके लिये एक तेजस्विनी सर्व आलिंगनकारिणी, सर्व-रूपान्तरकारिणी आध्यात्मिकता उठ रही है।

प्रवासी भारतीय बन्धुका एक पत्र

(यह पत्र आर्यजगत्के लिये चिन्तनीय है, ब्रिटिश गोयनामें ईसाइयोंकी प्रचार पद्धति एवं भारतीयोंपर होनेवाले आघातोंका इससे पता लगता है, साथ ही भारतीय सांस्कृतिक संस्थाओंके लिये उनके कर्तव्यकी ओर संकेत भी मिलता है।)

जीवन परिचय

श्री बालकृष्ण वर्माका जन्म ब्रिटिश गोयनाके गोल्डन ग्रो नामके एक ग्राममें हुआ है। इस समय आप वहाँ तैयार कपड़ोंका व्यवसाय करते हैं। आपकी आयु ३९ वर्षका है। आपके पिता भारतसे ब्रिटिश सरकारकी गुलामी प्रथाके अन्तर्गत वहाँ गये थे जो बादमें मुक्त होकर आजसे ३८ वर्षपूर्व भारत लौट आये थे।

पत्रका सारांश

भाई श्री महेशचन्द्रजी, सादर नमस्ते।

आपका पत्र पाकर म अत्यन्त खुशी हुआ, आपसे पत्र व्यवहार करना बहुत पसन्द करता हूँ। भाईजी, आप इस देशवासियोंके लिय यदि कुछ सेवा कर सकें तो हमारे लिये यह सौभाग्यकी बात है। हमारी रगोंमें भारतीयोंका खून विद्यमान है। लेकिन आजतक आपलोगोंसे अपना सच्चा सम्बन्ध तथा स्वरूप समझनेमें हम लोग असमर्थ रहे हैं। भाईजी, इस देशमें एक सच्चे वैदिक उपदेशककी आवश्यकता है और ऐसे उपदेशकको चुनना स्वाध्याय-मण्डलसे ही हो सकता है।

यहाँ एक व्यक्तिका मासिक खर्च २५ डालर है, जिससे उसका जीवन निर्वाह भलि प्रकार हो सकता है। वह यदि हिन्दी सिखानेके क्लास यहाँ खोल दे और अपने प्रचार कार्यको शनि, रविको करता रहे तो उसकी जीविका पूर्ण रूपसे चल सकती है और इससे निश्चित रूपसे धनसंग्रह भी हो सकता है। यदि इस देशमें उपदेशक द्वारा हम लोग एक गुरुकुल खोल सकें तो इस देशका बहुत कल्याण होगा।

यहाँ कोई ऐसी संस्था नहीं है जो जनताके लिये सेवा (शिक्षा, धर्मप्रचार, उपदेश, व्यापारी संरक्षा) कर सके। हाँ, आर्योंका एक विशाल भवन अवश्य है जिसका मूल्य ६० हजार रुपयेका है- बद पड़ा है। श्री प भास्करानन्दजी एम. ए वैदिक मिशनरी जो भारतसे १४ वर्षपूर्व आये थे, उनके प्रयत्नोंके फलस्वरूप यह भवन बना था। उनकी इच्छा थी कि विद्यालयके रूपमें इसे खोला जाय। किन्तु ऐसा न हो सका, क्योंकि उन्हें अचानक भारत लौट जाना पड़ा। उन्होंने लोटकर आने और विद्यालय चलानेका वचन दिया था। आज छ वर्ष होगये और वे न लौट सके। उनका सेवा यहाकी जनताने खूब की थी और धनसंग्रह भी किया था। अब वह भवन किन्हीं नामधारी आर्योंके अधिकारमें है। वे कुछ आदमियोंको एकत्रित करके हवन आदि कर लिया करते हैं और शेष समय वह बद रहता है। अधिकाश आर्य भाई उस भवन तथा कर्मचारियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते।

यहाँ इन भाइयोंको, जो ईसाई होना चाहते हैं और जिनमेंसे कुछ अपनी भाषा अंग्रेजी समझते हैं और कुछ हिन्दी, उन्हें अमरिकन आदि देशोंकी मिशनरियों द्वारा खूब सुविधायें दी जाती हैं। इस प्रकार आर्य जातिकी ये सन्तानें दिन प्रतिदिन ईसाई धर्ममें प्रविष्ट होकर अपने धर्मको छोड़ती जारही हैं। पूज्यपाद श्री प सातवलेकरजीको मेरे लिये नमस्ते कहें तथा स्वाध्याय मण्डलके समस्त कर्मचारियोंको भी नमस्ते दें।

स्वाध्याय-मण्डल-संचालिता

संस्कृतभाषा-प्रचार-समिति किल्ला पारडी (सूरत)

प री क्षा-वि भा ग

५-६ एप्रिल ५२ ई. को होनेवाली संस्कृतपरीक्षाओंका कार्यक्रम निम्न प्रकारसे है-

शनिवार ५ एप्रिल		रविवार ६ एप्रिल	
१०॥ से १॥	२॥ से ५॥	१०॥ से १॥	२॥ से ५॥
विशारद-प्रश्न पत्र १	विशारद-प्रश्न पत्र २	विशारद-प्रश्न पत्र ३	विशारद प्रश्न पत्र ४
×	परिचय-प्रश्न पत्र १	परिचय-प्रश्न पत्र २	परिचय-प्रश्न पत्र ३
×	×	प्रवेशिका-प्रश्न पत्र १	प्रवेशिका-प्रश्न पत्र २
×	×	प्रारम्भिणी	×

संस्कृतभाषाका अध्ययन करना प्रत्येक भारतवासीका राष्ट्रीय धर्म है।

संस्कृत हमारी मातृभाषा है। अतः उसका ज्ञान होना परम आवश्यक है। जो मातृभाषा है वह कठिन या दुर्बोध कैसे हो सकती है?

आवश्यक सूचनायें

१— २-३ फरवरी १९५२ ई. की संस्कृत परीक्षाओंका परिणाम ता० २४-३ ५२ को प्रकाशित किया जा चुका है।

२— जो उत्तीर्ण परीक्षार्थी अपने अलग अलग प्रश्नपत्रोंके प्राप्ताङ्क मंगाना चाहेंगे उन्हे चार आने शुल्क भेजना होगा। अनुत्तीर्ण परिक्षार्थियोंसे भी शुल्क लिया जाएगा।

३— जो अनुत्तीर्ण परीक्षार्थी अपनी उत्तर पुस्तकोंका पुनर्निरीक्षण करवाना चाहें उनको परीक्षाफल प्रकाशन तिथिसे २० दिनके अन्दर अर्थात् ता. १४-४-५२ तक प्रत्येक उत्तर पुस्तकके लिये आठ आना निरीक्षण शुल्क भेजते हुए अपना पूरा नाम, क्रमसंख्या एवं प्रश्नपत्र संख्या देकर प्रार्थनापत्र भेजना चाहिये।
निरीक्षणमें केवल इतना ही देखा जाएगा कि प्रत्येक प्रश्नके अङ्क दिये गये हैं अथवा नहीं।

४— फरवरीकी परीक्षाके प्रमाणपत्र ता० २१-४-५२ तक केन्द्रव्यवस्थापकोंके पास भेज दिये जाएँगे।

करता है, शत्रुके नगर और कीले तोडता है और आर्योंके लिये स्थान करके देता है। इन लडाइयोंके अतिरिक्त भी इन्द्रके कर्तव्य हैं। वह अनुयायियोंपर दया करता है। सहायता देता है, धन देता है, हरप्रकारकी सहायता करता है। देखिये—

१८७ ये त्वायन्तः सख्याय सख्यं वृणानाः अम्वमदन्।

' जो इन्द्रके अनुयायी होते हैं, और उसके साथ मित्रता करते हैं, उनको वह आनन्द देता है। ' उनको सुख प्राप्त हो ऐसा करता है। ' **१८७ य इन्द्रे दुवांसि दधते, स जनः न ब्रेजते, न रेषत्।** ' जो इन्द्रकी स्तुति करता है, वह स्थान-भ्रष्ट नहीं होता, और वह विनाशको भी प्राप्त नहीं होता। अर्थात् इन्द्रका जो अनुयायी होता है, वह सुरक्षित होता है और निर्भय होता है। वह इन्द्रकी सहायता प्राप्त करता है।

इन्द्र धन देता है

११६ स वीरवत् गोमत् नः धातु।

११७ वसूनि ददः।

२५२ सूरिभ्य उपमं वरूथं यच्छ।

' वह इन्द्र वीर पुत्र और गौवें जिसके साथ होती हैं, ऐसा धन देता है। ज्ञानियोंको वह श्रेष्ठ धन देता है। ' जो दान देने योग्य हैं उनको वह धन देकर सहायता करता है।

१११ नः धार्यस्य पूर्धि।

१३६ अधि क्षमि यत् विषुरूपं अस्ति, वसूनि दाशुषे ददाति।

' हमें स्वीकार करने योग्य भरपूर धन दो। जो इस पृथिवी-पर सुरूप या कुरूप है, उसका राजा इन्द्र दाताके लिये अनेक प्रकारके धन देता है।

१३८ नः राये वरिवः कृधि। ते मनः मघाय गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः।

१७१ दुर्णशः रयं आभर।

' हमें धन मिले इसलिये श्रेष्ठ धन हमारे लिये दे। तेरा मन धनदान करनेके लिये प्रवृत्त हो। गौवें, घोडे, रथ आदि धन है। ऐसा यह धन हमें प्राप्त हो। जिसका नाश नहीं होता ऐसा घर हमें प्राप्त हो। ' अर्थात् हमें स्थायी टिकनेवाला घर, गौवें, घोडे, रथ तथा अन्य प्रकारके अनेक धन हमें चाहिये। ये धन इन्द्र देता है।

१४६ नः पितरः त्वे विश्वाः वामाः सुदुघाः गावः अश्वाः असन्वन्। त्वं देवयते वसु वनिष्ठः।

१४७ विशा गोभिः अश्वैः अस्मान् राये अभिशिशीहि।

' हमारे पूर्वजोंने तुम्हारे पाससे सब प्रकारके धन, दुधारु गौवें, उत्तम घोडे प्राप्त किये थे। तूं देवभक्तको धन देता है। तूं हमें सौंदर्य, गौवें, घोडे तथा धन दे दो। ' हमें सब प्रकारका धन चाहिये। वह तुम्हारे पाससे मिलता रहा है, हमारे पूर्वजोंने तुमसे ही वह प्राप्त किया था। इसलिये हमें भी अब वह चाहिये।

१६९ विभक्ता शीर्ष्णे शीर्ष्णे विवभाज।

' धनका विभाजन करता हुआ तूं प्रत्येक मनुष्यके लिये धनका विभाजन कर दो। ' कोई मनुष्य विना धनके न रहे।

१८३ दाशुषे वसु मुहुः दाताऽभूत्।— दाताके लिये धन वारंवार देनेवाला हो। ऐसा कभी न हो कि दानाके पास धन दान करनेके लिये न रहे। दाताका धनकोश सदा भरपूर भरा रहे।

' **१८८ चित्र्यं रयिं नः आभर** '- चित्रविचित्र प्रकारका धन हमारे पास सदा भरपूर भर दो। कभी हमारा धनकोश रिक्त न रहे। ' **१९८ इन्द्रः विषह्य मघानि दयते** '— इन्द्र शत्रुका पराभव करके शत्रुके धन लाता और अपने अनुयायियोंको बांटता है।

१६७ देववतः नप्तुः पैजवनस्य सुदासः गो द्वे शते वधूमन्ता द्वा रथा, दानं रेभन्।

देवभक्तके पर्यौत्र, पिजवनके पुत्र सुदास राजाने गौओंके दो सैंकडे, तथा स्त्रियोंके समेत दो रथ दानमें दिये। इस तरह दान दिये जाते थे। गौवें, घोडे, रथ, दास दासी यह सब दानमें प्राप्त होता था।

दान धनका ही होता था ऐसी बात नहीं। घर, घोडे, रत्न, गांव, रथ, भूमि, धान्य, वस्त्र आदि जो सबके उपयोगके सब पदार्थ दानमें दिये जाते थे। दान देनेवालेका यश बढता था और दान लेनेवाला सुखी हो जाता था। जिसको जिस वस्तुकी

आवश्यकता होती थी वह दानसे दूर हो जाती थी । यह दानकी प्रथा अच्छी है और वह समाजमें सुख बढाती थी ।

इन्द्रने जलके मार्ग बनाये

१५० सुदासे अर्णांसि गाधानि सुपारा अकृणोत् ।

जहां अपार जल था, वहां पार होने योग्य, जलमेंसे पार जाने योग्य मार्ग, सुदासके लिये बनाया। जलमें ऐसा मार्ग बनाया यह इन्द्रकाही सामर्थ्य है । ' **१५० शर्धन्त उचथ्यस्य शिम्युं सिन्धूनां अशस्तीः अकृणोत् ।** '— स्पर्धा करनेवाले उचथ्यके शिम्युको नदियोंके कष्ट बढा दिये । शत्रुके लिये नदीके कष्ट हों और अपने लोगोंको कष्ट न हों, इसलिये नदियोंके प्रवाह भी बदल दिये । इससे शत्रुराज्यमें नदी प्रवाहसे नगर बह गये और अपने लोगोंको अच्छा स्थान मिल गया ।

१९४ त्वं महिना परिष्ठिता पूर्वीः अपः स्रवितवा कः ।

' तू अपने सामर्थ्यसे पहिले स्तब्ध हुई नदियोंके प्रवाहोंको अच्छी तरह प्रवाहित किया । ' नदियोंके प्रवाहोंको अच्छी तरह मार्ग करके दिया, जिन मार्गोंसे नदियों बहने लगी । ' **१९४ धेना त्वत् रथ्यः न वावक्रे** '— नदिया रथके समान दौडने लगीं । नदियोंके प्रवाहोंको इष्ट दिशासे चलाना यह इन्द्रका कार्य है, नहर निकालना, नदियोंको सुपार करना यह सब इन्द्रके कार्य है । राजाको अपने राष्ट्रमें ऐसे ही जलप्रवाहोंका संचालन करना चाहिये ।

इन्द्र कवि है

इन्द्र जैसा राजा है, शूर है, युद्धमें प्रवीण है वैसा कवि भी है । ' **१४७ विदुः कविः त्वं** '- तू कवि है और (विदुः) ज्ञानी भी है । ज्ञान और कवित्व राजा और राजपुरुषोंमें होना चाहिये । नहीं तो वे राज्यमें ज्ञान प्रचार नहीं कर सकेंगे । जो राजा ज्ञानी और कवि है वह ' **१६६ सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ।** '— ज्ञानियोंको सहायता देकर विद्वानोंके लिये उत्तम दिन करता है । विद्वानोंको धनधान्यसे समृद्ध करके, उनसे ज्ञान प्रचार करवाके उनका संमान और उनकी प्रतिष्ठा बढाकर उनके लिये अच्छे दिन निर्माण करके देता है । ज्ञानियोंके लिये राष्ट्रमें अच्छे दिन रहने चाहिये । ज्ञानियोंके लिये जिस राष्ट्रमें दुर्दिन होते है वह राष्ट्र नष्ट हो जाता है ।

सत्यप्रिय इन्द्र

' १८७ स ऋतपाः ऋतेजाः राये क्षयत् । '

' वह इन्द्र सत्यका पालन करता है, सत्यपालन करनेके लिये ही वह उत्पन्न हुआ है । इस कारण वह धनके लिये योग्य स्थान देता है । सत्यका पालन करनेसे वह धनसे भरपूर होता है । सत्यके मार्गसे ही वह धनवान् हुआ है ।

मानवोंपर दया

इन्द्र मानवोंपर दया करता है । इस विषयमें कहा है— ' **२१५ देवता एकः मर्तान् दयसे** '— सब देवोंमें एक ही यह इन्द्र मानवोंपर दया करता है । अन्य देव इसके समान दया करनेवाले नहीं है । यही एक इन्द्र सब मानवोंपर दया करता है और मानवोंकी सहायता करता है । ' **१६३ चर्षणिप्राः विशः प्रचर ।** ' - प्रजाजनोंका संरक्षण करनेवाला इन्द्र प्रजाओंमें संचार करता है, प्रजाजनोंकी अवस्था देखता और उनकी सहायता करता है ।

राजा इन्द्र

' **२३६ जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा** '— जंगम प्रजाओंका भी राजा इन्द्र है । स्थावर पदार्थोंका भी वह राजा है, पर जंगमोंका भी वही राजा है । राजाका अधिकार जैसा स्थावरोंपर है वैसा जंगमोंपर भी है । इसलिये उसके कर्तव्य पूर्वस्थानमे जो वर्णन किये हैं, वे संरक्षण करना, शत्रुनाश करना, धनका योग्य बंटवारा करना आदि हैं ।

कठोर मन

' **१८७ अस्य घोरं मनः** '— इन्द्रका मन घोर है, कठोर है । कोमल नहीं है । उसका मन घोर है इसलिये वह निष्पक्ष होकर स्थावर जंगमका योग्य शासन करता है ।

' **१८६ स इनः सत्वा गवेषणः धृष्णुः**— वह राजा बलसे शत्रुका पराभव करनेवाला है और प्रजाकी गौवें चुरानेवाले चोरोंसे गौवें वापस लाकर उनको देता है । राजाका यह एक कर्तव्य यहां बताया है, वह यह है कि वह राजा अपनी प्रजाकी चोरी होनेपर चोरीका माल चोरोंसे वसूल करके वह जिसका था उसको वापस कर देवे । और चोर पुन

चोरी न कर सके ऐसा प्रबंध करे। प्रजाप्रजामें राजाके विषयमें इतना विश्वास उत्पन्न हो कि हमारा राजा चोरीका माल हमें वापस ला देगा और हमारा संरक्षण करेगा।

'**११३ गवेषणं रथं हरिभ्यां युजे।**'— गौवोंकी खोज करनेके लिये जानेवाले इन्द्रके रथको दो घोडे जोते होते हैं। उसमें बैठकर वह जाता है और चुरायी गौवें ढूंढकर वापस लाता है। '**१५६ त्वं गव्युः। त्वं हिरण्ययुः ७८१ गवां एकः पतिः असि**'— तूं गौवें देनेवाला, धन देनेवाला और गौओंका एक स्वामी है।

यातना देनेवालोंको दण्ड

यातना देनेवालोंको योग्य दण्ड देना चाहिये इस विषयमें इन्द्रकी प्रसिद्धि है। '**८३६ यातुमद्भ्यः अशनिं सृजत्**'— यातना देनेवाले दुष्टोंपर शस्त्रका प्रहार करता है। '**८३७ रक्षसः अभि पति**'— दुष्टोंका प्रतिकार करता है।

'**८४० यातुधानं जहि**'— यातना देनेवालोंका नाश कर। '**मूरदेवाः विग्रीवा आसन्**'— मूढोंको देव मानकर उनकी पूजा करनेवालोंका सिर टूट जाय। ऐसे मूढ-पूजक अपने समाजमें न रहें। '**८४१ रक्षोभ्यः वधं अस्यत्**'— दुष्ट क्रूर शत्रुका वध करो।

इस तरह इन्द्रके वर्णनसे राजा और राजपुरुषोंके कर्तव्योंका वर्णन हुआ है। इन्द्रका स्वरूप विद्युत् है, मेघ गर्जना होकर जो विद्युत् होती है वह मध्यस्थानमें रहनेवाली देवता इन्द्र है। इसीका वर्णन करते हुए, यह विद्युतके गिरनेसे वृक्ष, पर्वत, पत्थर आदि टूट जाते है, यही शत्रुका नाश करना है। यह देखकर इन्द्र राजा, क्षत्रिय और राज्यशासक करके वर्णन किया है। इन्द्रके अन्य रूप ईश्वर, सूर्य आदि अनेक वर्णन किये है। यह इन्द्र देवता क्षत्रिय देवता है। अग्नि ब्राह्मण देवता है। इन्द्र क्षत्रिय है। अग्निके वर्णनमें ज्ञान आदि गुणोंका वर्णन है, वैसा इन्द्रके वर्णनमें नहीं है। क्योंकि क्षत्रियका आदर्श इन्द्र देवतामें ऋषि देख रहा है और आदर्श क्षत्रियका वर्णन इन मंत्रोंमें है। राजा और राजपुरुषोंके कर्तव्य पाठक यहां इन मंत्रोंमें देख सकते हैं।

मरुद्देवतामें आदर्श पुरुषका दर्शन

इन्द्रके सैनिक 'मरुत्' है। इन्द्र सेनापति है और उसकी सब सेना मरुतोंकी है। मरुतोंकी सेनाके द्वारा ही इन्द्र शत्रुका पराभव करता है। जो जो पराक्रम इन्द्र करता है वह मरुतोंकी-सेनाकी सहायतासे करता है। सेनापतिका बल और युद्ध कुशलता तो रहती ही है, परंतु सैनिक शूर न रहे तो अकेला सेनापति क्या कर सकता है। इसलिये सैनिकोंका महत्त्व निःसंदेह है।

इन्द्र मध्यस्थानीय विद्युत् है और मरुत् उसके सहायक विविध प्रकारके वायु हैं। जब वेगसे वायु चलता है, तब वह वृक्षोंको तोडता है, मकानोंको भी गिराता है, इस तरह जो उसके बीचमें आजाय उसका नाश करता है। सैनिक शत्रुके प्रदेशमें आक्रमण करते हैं। इसलिये विविध वायुदलोंपर सेनादलोंका आरोप कवि करता है और मरुतोंमें आदर्श सैनिकभाव वह देखता है।

मरुतोंके गण होते हैं। नियमित गणसंख्यामें रहना यह एक सैनिकोंका कर्तव्य होता है। एक कतारमें ७ मरुत् वीर रहते हैं और आगे पीछे एक एक पार्श्वरक्षक होता है। इस तरह एक पंक्तिमें ९ मरुद्वीर रहते है। ऐसी मरुतोंकी सात कतारें होती हैं अर्थात् एक गणमें [७+२=९×७=] ६३ मरुद्वीर रहते हैं। यह मरुद्वीर चलते हैं तो ७।७ की पंक्तियोंमें चलते हैं। साथ दोनों ओर रक्षक रहते हैं। मरुतोंका गण इस तरह ६३ सैनिकोंका होता है।

यह सैनिक रचना मरुतोंको देखकर कवियोंने की है। वायु प्रवाहोंका हमला मिलकर होता है। इसलिये मरुतोंका वर्णन गणशः किया है।

मरुतोंका एक घरमें रहना

मरुत् अकेला अकेला पृथक् पृथक् घरमें नहीं रहता। ये सब एक बडे घरमें रहते हैं। '**४५१ सनीळाः**'- एक घरमें रहनेवाले यह मरुतोंका वर्णन है। आजकलके यूरोपियन सैनिक एक घरमें बहुतसे रहते हैं। उस सैनिकोंके घरको 'बरॉक' कहते हैं। वैसे ही मरुतोंके बडे घर होते थे। सैनिक ये संघदेव हैं। वे संघमें रहते, संघसे हमला करते हैं, सब कार्य संघसे ही करते हैं। रहना सहना संघसे होता है। एक घरमें रहनेसे इनके अन्दर सांघिक जीवन आजाता है, जो संघशक्ति बढाता है।

घोडेपर बैठनेवाले

'**४५१ स्वश्वाः**'—घोडेपर बैठनेमें प्रवीण। सैनिकोंका घुड-दल भी होता है। उसमें सब सैनिकोंके एक जैसे घोडे होते हैं। वे भी पंक्तियोंमें ही जाते हैं।

रथमें मरुत्

' ४७३ रथ्यः मरुतः '— रथमें बैठनेवाले मरुत। ये भी रथोंकी पंक्तिमें भ्रमण करते है। मरुतोंका नाम गणदेव है। वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत ये गणदेव हैं। ये गणोंसे ही सब कार्य करते हैं।

खेलमें प्रवीण

' ४६८ पयोधा वत्सासः न प्रक्रीडन्तः- दूध पीनेवाले बालकोंके समान ये मरुत् खेलते रहते हैं। बालक जैसे निष्कपटभावसे खेलते रहते हैं, उस तरह ये मरुद्वीर खेलते हैं। मर्दानी खेल खेलना यह इनकी वृत्ती ही है। खेलसे इनका शरीर और मन स्वस्थ रहता है। देवोंके लक्षणोंमें ' दिव्-क्रीडा, विजिगीषा ' ये लक्षण दिये हैं, उनमें क्रीडा पहिला लक्षण है। यह क्रीडा पौरुषके खेल है। जो देव होते हैं वे पौरुष खेलोंको खेलते ही हैं।

त्वरासे कार्य करनेवाले

मरुत् त्वरासे कार्य करते हैं, सुस्ती उनके पास नहीं होती। ' ४७१ इमे तुरं रमयन्ति '। ' ४५५ साकं उक्षे गणाय प्रार्चत '- ये मरुत् त्वरासे दूसरोंको सुख देनेका कार्य करते हैं। साथ साथ रहकर ये कार्य करते हैं इसलिये इनके गणोंका आदर करो। ये सैनिक साथ साथ एक घरमें रहते हैं और शत्रुपर आक्रमण करनेके समय संघसे ही आक्रमण करते है। भोजन आदि सब संघसे ही इनका होता है। इसलिये इनमें प्रचण्ड संघशक्ति रहती है। सात्विक जीवनसे संघशक्ति निर्माण होती है और सात्विक रहन सहनसे ही वह शक्ति बढती है। इसलिये मरुतोंके सब कार्य संघसे होते हैं।

शत्रु नहीं दबाता

मरुतोंमें प्रचण्ड सात्विक बल होनेसे इनको कोई भी शत्रु दबा नहीं सकता। ' ४६७ अन्य अरावा नूचित आदभत् ' कोई दूसरा शत्रु इनको दबा नहीं सकता। क्योंकि ये संघसे रहते है, संघसे शत्रुका प्रतीकार करते हैं। इसलिये इनका बल अधिक होता है और हरएक प्रकारका शत्रु इनसे दबाया जाता है।

शत्रुका नाश करते हैं

मरुतोंका कर्तव्य ही है कि राष्ट्रकी सुरक्षा करनेके लिये यत्न करना और युद्ध उपस्थित हुआ तो शत्रुके साथ युद्ध करना। इसलिये इनके विषयमें कहा है—

' ४६९ वशासयन्तः '— ये शत्रुका विनाश करते हैं।

' ४७१ अररुषे गुरुद्वेषः दधन्ति '— हिंसक शत्रुपर बडा द्वेष रखते हैं

' ४७८ उग्राः अयासुः रोदसी रेजयन्ति '— ये उग्र वीर जब शत्रुपर हमला करते हैं, तब पृथ्वीको हिला देते हैं।

' ४८६ वः यामन् विश्वः भयते '— तुम वीरोंके आक्रमणसे सब शत्रु भयभीत होते हैं।

' ८३४ रक्षसः संपिनष्टन '— दुष्टोंका विनाश करो, शत्रुओंको पीस डालो।

' ४७१ इमे सहः सहसः आनमन्ति '— ये वीर अपने बलसे बलिष्ठ शत्रुको भी विनम्र करते हैं।

' ४७६ उग्रः मरुद्भिः पृतनासु साळ्हा '— उग्र वीर मरुतोंके साथ रहनेसे शत्रुका पराभव करता है।

' ४८८ युष्मा ऊतः सहुरिः '-- आप मरुतोंसे जो सुरक्षित होता है वह शत्रुका पराभव करता है।

' ४८८ युषा ऊतः सम्राट् वृत्रं हन्ति '-- तुम्हारे द्वारा सुरक्षित होनेसे सम्राट शत्रुका वध करता है।

' ४९१ युष्माकं अवसा द्विषः तरति '-- तुम्हारे संरक्षणसे शत्रुको पार करता है।

इस तरह मरुद्वीर शत्रुका नाश करते हैं, तथा लोगोंको संरक्षण देकर उनमें भी अपना संरक्षण करनेका बल बढाते हैं।

वीरोंके शस्त्र

' ४६३ स्वायुधा इष्मिणः '- मरुत् वीर उत्तम शस्त्रास्त्र अपने पास रखते हैं और वेगसे शत्रुपर आक्रमण करते हैं। उनके पास ' ४६९ नृहा वधः '--शत्रुके वीरोंका वध करनेवाले शस्त्र होते हैं। ' ४६१ सनेमि विद्युं '-- उन वीरोंका शस्त्र अत्यंत तीक्ष्ण धारावाला होता है। इस तरहके उत्तम शस्त्रास्त्र इन वीरोंके पास रहते हैं। इसलिये इनका प्रभाव युद्धोंमें अत्यंत अधिक होता है।

मरुतोंद्वारा संरक्षण

मरुतोंद्वारा जिसको संरक्षण मिलता है वह निर्भय होता है, इस विषयमें कहा है—

४८४ विश्वे सूरीन् अच्छ ऊती आजिगात ।
४८७ स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्रतिरेत ।
४८८ युष्मा ऊतः शतस्वी सहस्री ।
४९१ वः ऊती पृतनासु नहि मर्धति ।

' सब मरुत् ज्ञानियोंका संरक्षण करते हैं । इनके प्रशंसनीय संरक्षणसे मनुष्य आपत्तियोंसे मुक्त होता है । इनके संरक्षणसे सुरक्षित हुआ मनुष्य सैंकडों और सहस्रों प्रकारके धन प्राप्त करता है । इनके संरक्षणसे सुरक्षित हुआ मनुष्य युद्धोंमें भी विनष्ट नहीं होता । ' यह लाभ इनके संरक्षणसे प्रजाजनोंको प्राप्त होता है ।

धनका दान करनेवाले मरुत्

मरुद्वीर जैसा संरक्षण करते हैं वैसा धनका दान भी करते हैं—

४६७ सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात ।
४८३ सूनृतारायः मघानि जिगृत ।
५०० सुदानः मरुतः गृहमेधासः ।

' उत्तम शौर्यके साथ रहनेवाला धन हमें दो । सत्यमार्गसे प्राप्त होनेवाले धन दे दो । दान देनेवाले मरुत् गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले हैं ।

इस तरह मरुद्वीरोंके दातृत्वका वर्णन है । जो वीर होते हैं, वे दानी होते ही हैं । उदारता वीरके साथ रहनेवाली होती है ।

शुद्धता, सत्यनिष्ठा और यशस्विता

मरुद्वीरोंकी शुचिताके विषयमें इस तरह वर्णन आता है—

४६४ शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ।
४८९ अनवद्यासः शुचयः पावकाः मरुतः ।

ये मरुत् जन्मसे शुद्ध, पवित्र और दूसरोंको पवित्र करने-वाले हैं । ये शुद्ध और पवित्र होनेके कारण अनिंद्य है । वीरोंको शुद्धाचरणी होना चाहिये । सैनिकों और रक्षकोंका आचरण परि-शुद्ध होना चाहिये ।

इनके सत्यनिष्ठ होनेके विषयमें ऐसा वर्णन है-

४६४ ऋतेन सत्यं आयन् ।

' ये मरुत् वीर सरल आचरणके साथ सत्यको प्राप्त करते हैं । ' सरलता और सत्यता इनके आचरणमें होती है । प्रायः वीर ऋजुगामी, सत्यनिष्ठ और सरल व्यवहार करनेवाले होने चाहिये । अथवा वीरोंका आचरण सीधा होना चाहिये ।

जो पवित्र और सत्यनिष्ठ होते हैं वे यशस्वी होते हैं, इसलिये इनके वर्णनमें इनके यशस्वी होनेका भी वर्णन है—

४६२ तुराणां वः प्रिया नाम ।

त्वरासे कार्य समाप्त करनेवाले इन मरुतोंका नाम अर्थात् यश सबको प्रिय है । यशस्विताके साथ उनका प्रिय होना भी है । वीर यश भी प्राप्त करें और प्रिय भी हों ।

नेता वीर

' **४८३ नरः मरुतः** '– मरुत् नेता है, नर हैं, अर्थात् चलानेवाले हैं । अतएव वे ' **४७८ यजत्राः** '– पूज्य हैं, और ' **४५३ व्यक्ताः** ' नेता करके प्रकट या प्रसिद्ध भी होते हैं । छुपे रहकर वे नेतृत्व नहीं करते परंतु प्रकट रीतिसे वे नेतृत्व करते है ।

' **४५३ मर्याः** '— मरनेके लिये तैयार हैं । ' **मरुत्** ' (मर्–उत्) का अर्थ भी मरनेतक उठकर लडनेवाले, यही भाव यहां मर्यका है । मरनेके लिये तैयार रहकर वीरतासे लडने-वाले ये वीर हैं ।

' **४६० मनांसि क्रुध्मी घृणोः शर्धस्य धुनिः** '— इन वीरोंके मन क्रोधसे भरे जैसे रहते है । शत्रुका पराभव करनेके बलकी इनके अन्दर पराकाष्ठा होती है । ये वीर ' **४५८ यामं येष्ठाः ओजोभिः उग्राः, ४५९ शवांसि स्थिराः** '— शत्रुपर आक्रमण करनेके समय आगे रहनेवाले, अपने बलसे ये उग्रवीर स्थिर बलसे युक्त होते हैं ।

' **४५५ स्वपूर्भिः मिथः अस्पृध्रन्, ४५७ सा विट् मरुद्भिः सुवीरा, नृम्णं पुष्यन्ती, सनात् सहन्ती** '- वे वीर अपने आप परस्पर स्पर्धा करते हैं, खेलकूदमें बडे वेगसे खेलते कूदते हैं । मरुतोंके साथ रहनेवाली प्रजा उत्तम वीर होती है, अपनी वीरता बढाती है और सदा शत्रुका पराभव करती है । प्रजाकी शक्ति भी इन वीरोंके कारण बढती है ।

४५६ मही पृश्निः ऊधः जभार '— गौ अपने स्तनोंमें दूध इन वीरोंको देनेके लिये ही धारण करती है । मरु-तोंको वेदमें अन्यत्र ' गोमातरः, पृश्निमातरः ' कहा है । ये गौको

माता मानकर उसका संरक्षण करते हैं। गोरक्षा करनेवाले ये वीर हैं। वीरोंको गोरक्षण अपनी मातृभूमिमें करना चाहिये।

मरुद्वीरोंका बल

मरुतोंके प्रचण्ड सामर्थ्यके विषयमें वेदके मंत्रोंमें बहुत प्रकारका वर्णन है, उनमेंसे थोडेसे मन्त्र यहा देखिये--

४५९ गणः तुविष्मान्।
४६० शुभ्रः शुष्मः।
४६५ आयुधैः स्वधां अनुयच्छमानाः।
४६६ बुध्न्या महांसि प्रेरते।
४६७ वाजिनः, ४७० वृषणः, ४७४ अर्यः
४७८ युद्धेषु शवसा प्रमदन्ति।
४८६ भीमासः तुविमन्यवः अयासः।
४९५ धृष्विराधसः। ४९९ रिशादसः।
५०१ स्वतवसः कवयः मरुतः

' मरुतोंका समुदाय बलवान् है; इनका बल निष्कलंक है, आयुधोंके साथ ये अपनी आधारशक्तिको ही देते है। ये अपने निजसामर्थ्योंको प्रेरित करते हैं। ये बलिष्ठ, समर्थ और गतिमान हैं, युद्धोंमें ये बलसे आनंदित होते हैं। ये भयानक दीखनेवाले शीघ्र कोप करनेवाले और शत्रुपर प्रभावी धावा करनेवाले है। ये शत्रुका नाश करनेवाले और अपनी शक्तिसे सामर्थ्यवान् और कवि अथवा ज्ञानी भी है।

ये वर्णन इनके बलका वर्णन कर रहे हैं। जो सैनिक हैं और ग्रामरक्षक हैं, वे बलवान चाहिये इसमें किसीको संदेह नहीं हो सकता।

अपने शरीरको सजाना

जिस तरह आजकलके पुलीस तथा सैनिक अपना गणवेश करके सजधजके साथ बाहर आते हैं, उसी तरह ये मरुत् भी अपना गणवेश करके सजधज कर अपने कार्यपर लगते हैं। शरीरके सजानेके विषयमें मंत्रोंमें वर्णन बहुत है, उनमेंसे कुछ नमूनेके मंत्र देखिये--

४५८ शुभ्राः शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्लाः।
४६३ सुनिष्काः स्वयं तन्वः शुम्भमानाः।
४६५ अंसेषु खादयः, वक्षःसु रुक्माः उपशिश्रियाणाः। विद्युतः रुचयः न।
४६८ यज्ञदृशः शुभयन्त। हर्म्येष्ठाः शिशवः न शुभ्राः।
४८० रुक्मैः आयुधैः तनूभिः भ्राजन्ते।
,, विश्वपिशा रोदसी पिशानाः।
,, समानं अञ्जि शुभे कं आ अञ्जते।
४९७ तन्वः शुम्भमानाः रण्वाः नरः।

' ये वीर मरुत् शोभिवन्त दीखते है और प्रभासे युक्त हैं। ये शरीरपर निष्क अर्थात् सुवर्णके पदक धारण करते हैं और उनसे शरीरकी शोभा बढाते है। कंधोंपर भूषण और छातीपर अलंकार धारण करते हैं और बिजलीकी चमकके समान चमकते हैं। यज्ञ देखनेके लिये जानेवाले जैसे सजकर जाते है और राजभवनमें रहनेवाले गौरवर्ण बालक जैसे सजे रहते हैं, वैसे ये वीर सजे रहते हैं। तेजस्वी आयुधोंसे ये चमकते हैं। अपनी शोभासे ये विश्वकी शोभा बढाते हैं। सबके आभूषण एक जैसे होते हैं जो उनकी शोभा बढाते हैं। ये शरीरकी सजावट करनेवाले रमणीय वीर हैं।'

ये वर्णन इनकी सजावटका वर्णन कर रहे है। मरुतोंमें ऋषि ग्रामरक्षकों (पुलिसों) और सैनिकोंका आदर्श देख रहा है। ऐसे रक्षक और सैनिक होने चाहिये। युरोप अमेरिकाके अन्दर पुलिसों और सैनिकोंका जैसा थाटबाट होता है, वैसा यह है। ऐसे ये रक्षक सजेसजाये न रहे, तो उनका प्रभाव जनतापर नहीं पडेगा और ऐसे सजधजसे रहे तो ही वे अपना कार्य उत्तम रीतिसे कर सकेंगे।

इसलिये रक्षकों और सैनिकोंके लिये यह आदर्श ध्यानमें रखने योग्य है। हमारे आजके रक्षक भी ऐसे प्रभावी हों।

वसिष्ठ ऋषिका वरुण, विष्णु और सोममें आदर्श-पुरुष-दर्शन

वरुण देवतामें ऋषिने आदर्श राजाका दर्शन किया है। इसलिये कहा है कि '**७०२ गृत्सः राजा वरुणः**'- वरुण राजा बडा विद्वान् है। अर्थात् राजा ज्ञानवान् होना चाहिये। आदर्श राजामें विद्या अवश्य चाहिये। वह '**७११ सुक्षत्र**' उत्तम क्षात्रबलसे युक्त होना चाहिये तथा '**७१२ अद्रिवः**' पर्वतके ऊपरके कीलों द्वारा अपने राज्यका संरक्षण करनेवाला होना चाहिये। अर्थात् वह अपने राष्ट्रमें किले तैयार करे और राष्ट्रको सुरक्षित करे। '**६९२ दुर्दभ स्वधावः**'- वह राजा किसीके दबावमें आकर अनिष्ट करनेवाला न हो, अपनी आधारशक्तिसे संपन्न हो। अपनी शक्तिसे अपने स्थानपर रहनेवाला हो। किसी दूसरेकी कृपासे राज्याधिकारमें आया न हो। '**६८९ अस्य जनूंषि महिना धीराः**' इसका जीवनवृत्त महत्त्वपूर्ण कार्य करनेके कारण जनताका धैर्य बढानेवाला हो। निर्बलता और भीरुता उसके जीवनमें न रहे। धीर तथा उदात्तभाव उसके जीवनमें टपकता रहे।

'**७०१ सुपारदक्षः राजा**'- संकटोंसे उत्तम रीतिसे पार होनेके साधन राजाके पास हों और उनका उपयोग योग्य समयपर दक्षतासे करे।

'**७०८ ते बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं गृहं जगम**'- उस राजाका जो बडा विशाल सहस्रद्वारवाला सभागृह है उसमें मैं प्रविष्ट हो जाऊंगा। अर्थात् राजाका एक सभागृह हो, उसमें वह सभासदोंसे संमति प्राप्त करके राज्यशासन करे। यदि सदस्योंकी संमतिकी अपेक्षा करनी नहीं है, तब तो इतने बडे सभागृहकी क्या आवश्यकता है? इसलिये राज्यशासनपरिषद् हो और वह बडी हो।

'**६९९ वरुणस्य स्पशः स्वाविद्याः सुमेके उभे रोदसी परिपश्यन्ति। ये ऋतावानः कवयः यज्ञधीराः प्रचेतसः मन्म इषयन्त।**'

'वरुण राजाके दूत बडे वेगसे इस विश्वमें घूमते हैं और सबका निरीक्षण करते हैं। कौन सत्यपालन करता है, कौन ज्ञान प्रचार करता है, कौन यज्ञ करता है, कौन विशेष ज्ञानमें प्रवीण है और कौन मननीय विचार प्रेरित करता है। इसी तरह कौन इसके विरुद्ध व्यवहार करता है वह सब वे देखते हैं।

इस तरह राजा अपने राज्यमें चारोंके द्वारा, दूतोंके द्वारा, सबका यथायोग्य निरीक्षण करे और राज्यशासन करे। वरुणदेवके वर्णनमें इस तरह आदर्श राजाका दर्शन ऋषिने किया है।

परमेश्वरका दर्शन

वरुणके वर्णनमें परमेश्वरका भी वर्णन है वह इस तरह है—

६८९ वरुणने आकाशको आधार दिया है, सूर्यको ऊपर रखा है, नक्षत्रोंको प्रेरित किया है। भूमिको विस्तृत किया है। ६९७ सूर्यके लिये मार्ग किया है, इत्यादि वर्णनमें वरुणका अर्थ निःसंदेह परमेश्वर है।

७०६-७०७ इन मन्त्रोंमें समुद्रमें नौका और उसमें वसिष्ठका वरुणके साथ बैठनेका वर्णन बडा ही हृदयंगम है। वह जीव और ईश्वरका शरीरमें निवास होनेकी कल्पनाको व्यक्त कर रहा है। ये मंत्र इस प्रकरणमें पाठक अवश्य देखें। बडे ही गंभीर अर्थवाले ये मंत्र हैं।

अन्य ज्ञानके साथ वेदमंत्रोंमें ईश्वरका वर्णन होता है, यह बात पाठकोंको पता है। इसलिये इस विषयका विवरण इस टिप्पणीमें अधिक नहीं किया। जिसका विचार नहीं किया जाता वही विषय बताना इस टिप्पणीका कार्य है।

विष्णु देवता

विष्णु देवता भी इन्द्र और वरुणके समान ही शत्रुका नाश करनेवाली है। इसलिये इसके मंत्रोंमें कहा है कि-

७८८ हे इन्द्राविष्णू ! शंबरस्य दृंहिता नव नवतिं च श्नथिष्ठ। वर्चिन असुरस्य शतं सहस्रं च वीरान् अप्रति साकं हथः ।

' इन्द्र और विष्णुने मिलकर शंबरके सुदृढ निन्यानवे नगर तोड दिये और उस बलिष्ठ शत्रुके एक हजार एक सौ वीर अतुलनीय रीतिसे मार दिये । ' यह पराक्रम इन दोनों देवोंने किया है ।

बाकी विष्णुके वर्णनमें परमेश्वरका वर्णन ही विशेष करके हैं। ' विष्णु ' सर्वव्यापक देवको कहते है ।

सोम देवता

सोम एक वनस्पति है । जिसका रस जीवन देनेवाला है और उत्साह बढानेवाला है । इस देवताका वर्णन भी शूरवीर जैसा किया है—

८६४ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि । तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥

(शूरग्रामः) शूरोंका संघ बनानेवाला, (सर्ववीरः) सब प्रकारके वीरोंके गुणोंसे युक्त, (सहावान्) शत्रुका पराभव करनेयोग्य बल धारण करनेवाला, (जेता) विजयी, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुध धारण करनेवाला, (क्षिप्रधन्वा) शीघ्रतासे धनुष्य चलानेवाला, (समत्सु अषाळ्हः) युद्धोंमें शत्रुके लिये अजिंक्य, (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) युद्धक्षेत्रमें सेनाएं परस्पर भिडनेपर शत्रुओंको परास्त करनेवाला, (धनानि सनिता) धनोंका दान करनेवाला तुम (पवस्व) प्रवाहित हो या पवित्र कर ।

इस मंत्रका प्रत्येक पद वीर पुरुषका वर्णन कर रहा है । पर यह मंत्र सोमदेवताका है । इसलिये कहा जाता है कि यहां सोमदेवतामें विजयी वीरका साक्षात्कार ऋषि कर रहा है । और देखिये—

८६७ क्रतुमान् राजा इव अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नत्— पुरुषार्थी राजाके समान यह सोम अपने बलसे संपूर्ण अनिष्टोंका नाश करता है । यहां सोमको राजाकी उपमा देकर कहा है कि वह दुष्टोंका नाश करता है ।

युद्धके समयका गणवेश

८६९ भद्रा वस्त्रा समन्या वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन्— कल्याणकारक संग्रामके योग्य गणवेश पहनकर यह बडा कवि अनेक उपदेश करता है । यह युद्धके समयका गणवेश भिन्न होता है, वह युद्धके समय ही पहना जाता है ऐसा कहा है । युद्धके समयके वस्त्र पृथक्, यज्ञके समयके वस्त्र पृथक् होते थे । यह इस मंत्रभागसे सिद्ध होता है ।

८७७ हन्ति रक्षः, परिबाधते अरातीः वृजनस्य राजा वरिवः कृण्वन् । —बलवान् राजा सोम राक्षसोंका नाश करता है, दुष्टोंको बाधा देता है, और धनका दान करता है । यह वर्णन भी शूर क्षत्रिय राजाके वर्णन जैसा ही है । इस तरहके वर्णन ऋषि उत्तम आदर्श क्षत्रियका साक्षात्कार करता है, इस मतकी पुष्टि कर रहे हैं । ऋषिको अपने राष्ट्रमें किस प्रकारके क्षत्रिय उत्पन्न होनेकी अभिलाषा थी यह इससे स्पष्ट हो जाता है, अथवा यों कह सकते हैं कि सर्व साधारणतः क्षत्रिय कैसे होने चाहिये यह इस वर्णनसे प्रकट होता है ।

सरस्वती देवी

स्त्री देवताओंमें सरस्वती और उषा प्रमुख स्थानमें गिनी जाती हैं । इनके वर्णनमें स्त्रीके गुणधर्मोका वर्णन आता है, वह देखने योग्य है—

७५५ एषा सरस्वती आयसी पूः धरुणं प्रसस्रे ।

' यह सरस्वती लोहेके प्राकारवाली नगरीके समान सुरक्षाका धारण करती है । ' स्त्री कीलेवाली नगरी जैसी संरक्षण करनेमें समर्थ हो यह इसका अभिप्राय है । स्त्रियां अबला नहीं रहनी चाहिये परंतु बलवती होनी चाहिये । देवताओंमें भी पुरुष देवताके पास २।४ ही शस्त्र रहते हैं, परंतु, स्त्री देवताओंके हाथोंमें १८।२८ तक शस्त्र रहते हैं। काली भवानी आदिके चित्र देखो । ये स्त्रियां युद्धमें शत्रुका प्रलय करनेवाली करके प्रसिद्ध है । वही बात यहां स्त्रीको ' आयसी नगरी ' कहकर बतायी है ।

७५७ नर्यः वृषा वृषभः शिशुः यविष्ठासु योषणासु ववृधे— जनोंका हित करनेवाला बलवान् बैल जैसा

सामर्थ्यवान् पुत्र इन पूज्य स्त्रियोंमें होकर बढता है। यहां स्त्रियों-को पुत्र कैसा हो उसका वर्णन है। प्रजाजनोंका कल्याण करनेका कार्य करनेवाला बलवान पुत्र होना चाहिये।

'७६१ शुभ्रा' सरस्वती है। यह स्वयं गौरवर्ण है और वस्त्र भी श्वेत पहनती है। '७६३ वाजिनीवती भद्रा सरस्वती भद्रं करत्'—यह बलवती सरस्वती सब प्रकारसे कल्याण करती है।

इस तरह सरस्वती देवीका वर्णन करते हुए कवि सामर्थ्यवती वीरा स्त्रीका वर्णन करता है और बताता है कि स्त्री विदुषी तथा सामर्थ्यवती होनी चाहिये।

उषा

सरस्वती देवी बडी विदुषी प्रौढ स्त्री जैसी वर्णन की है। परंतु उषा यह प्रौढकन्या अथवा नवविवाहिता तरुणी जो प्रियपतिको प्रसन्न करना चाहती है, प्रेमसे मिलना चाहती है ऐसी तरुणी जैसी वर्णन की है। सरस्वती और उषा दोनों स्त्री देवताएं हैं, परंतु उषाका लावण्य सरस्वतीमें नहीं है और सरस्वतीका प्रशस्त प्रौढत्व उषामें नहीं है। इस दृष्टिसे इन देवताओंके वर्णन देखने योग्य हैं।

६११ **दैव्या व्रतानि जनयन्तः**— देवोंके व्रत करती हैं। अपनी भावी उन्नतिके लिये ये अनेक व्रत वे करती हैं।

६१३ **वसूनां ईशे**— धनोंकी स्वामिनी हैं।

६२१ **भुवनस्य पत्नी**— भुवनकी स्वामिनी है। इतनी योग्यता और इतना अधिकार इस स्त्रीका है।

६१४ **विश्वापिशा रथेन याति**— यह सुंदर रथमें बैठकर भ्रमण करती है। '**विधते जनाय रत्नं दधाति**-' उत्तम शिल्पीको धन देती है।

६१९ **यती इव न**— संन्यासिनी जैसी यह उदास कभी नहीं रहती। '**पर्याचरन्ती**' पतिकी सेवामें तत्पर रहती है।

६३४ **युवती योषा उप रुरुचे**— तरुण स्त्री जैसी यह चमकती है।

६३५ **हिरण्यवर्णा सुदृशीक-संदृक् रुशत् शुक्र-वासः बिभ्रती**—सुवर्ण जैसे रंगवाली यह अत्यंत रमणीय स्त्री (रेशमी) चमकीला वस्त्र पहनती है।

६५१ **अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः भद्राः**— घोडे, गौवें और वीर पुत्रोंको पास रखनेवाली, कल्याण करनेवाली है। '**घृतं दुहानाः**'— सवेरे दूध दुहती है और दहीको बिलोडकर मक्खन बनाकर घी तैयार करती है। यह '**विश्वतः प्रपीताः**'— सब प्रकारसे हृष्टपुष्ट रहती है।

देखिये यह उषाका वर्णन आदर्श तरुणीका वर्णन है। कवि उषामें आदर्श तरुण स्त्रीका वर्णन देखता है ऐसा यहां स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। सजधजसे रहनेवाली, चमकीले वस्त्रभूषण पहननेवाली, सुंदर रथमें बैठकर घूमनेवाली, जिसके रथको सुंदर घोडे जोते जाते है, ऐसी तरुणी यहां वर्णित हुई है। स्त्रीके यति- संन्यासिनी- होनेका यहां स्पष्ट निषेध भी है। यति या संन्यासीनी होनेका यहां स्पष्ट और तीव्र निषेध है। तरुण स्त्री तो कभी यतिनी नहीं होनी चाहिये।

बुद्ध मतके अनंतर यति होनेकी प्रथा शुरू हुई, कलियुगमें संन्यास लेना उचित नहीं है, ऐसा मनुस्मृतिने भी निषेध ही किया है। तो भी संन्यास लेते है, यह बुद्ध मतकी छाप है। वैदिक धर्मके वेदके द्रष्टा सभी ऋषि गृहस्थी हैं। यही हमारे लिये आदर्श है क्योंकि मनुष्योंको यहां ही स्वर्गधाम बनाना है। पृथ्वीपर देवराज्यका प्रकाश करना है। वह इसको जगत् त्यागनेसे नहीं हो सकेगा।

मित्र और वरुण

वरुण देवतामें ऋषिने आदर्श पुरुषका दर्शन किस तरह किया है, वह हमने इससे पूर्व (पृ० ३९१ में) देखा है। अब मित्र और वरुण इन देवोंमें किस आदर्शका दर्शन किया है वह देखना है —

५०४ **एषः नृचक्षाः सूर्यः**— यह मित्र अर्थात् सूर्य मनुष्योंके आचरणका निरीक्षण करता है। इस तरह राजाको अपने राष्ट्रके लोगोंका निरीक्षण करना चाहिये। कौन यहां आर्य है और कौन दस्यु है इसकी परीक्षा करनी चाहिये।

'**मर्त्येषु ऋजु वृजिना च पश्यन्**'— मानवोंमें सरल कौन है और कुटिल कौन है, इसका निश्चय करना चाहिये।

'**विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः**'— सब स्थावर जंगमका संरक्षण करना चाहिये।

५०७ **भूरेः अनृतस्य चेतारः, ऋतस्य दुरोणे वावृधुः**— ये असत्यको दूर करनेवाले और सत्यका संवर्धन

करनेवाले हैं। शासकोंको भी अपने राज्यमें इसी तरह सत्यका संवर्धन और असत्यका विनाश करना चाहिये।

५०८ सुचेतसं क्रतुं वक्षन्तः, सुक्रतुं सुपथा नयन्ति– उत्तम चित्तवाले और उत्तम कर्मकर्ताको उत्तम मार्गसे ये ले जाते हैं। इसी तरह राष्ट्रमें जो उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानी हों, उनको उत्तम मार्गसे उन्नतितक पहुंचाना शासकोंका कर्तव्य है।

५०९ अचेतसं चिकित्वांसः नयन्ति— अज्ञानियोंको ये ज्ञानी बनाते और उन्नतिके प्रति पहुंचाते हैं।

५१० गोपावत् भद्रं शर्म यच्छन्ति— संरक्षणके साथ कल्याण देनेवाला सुख देते हैं। इसी तरह शासकोंको उचित है कि वे अपनी प्रजाको संरक्षण देवें और उनका कल्याण करें, उनको सुख देवें।

५११ सुदासे उरुं लोकं— उत्तम दाताको विस्तृत कार्यक्षेत्र देते हैं। **'अर्यमा द्वेषोभिः परिवृणक्तु'**– आर्य और दस्युको पहचानकर शत्रुओंको दूर करे।

५१९ अमूरा विश्वा वृषणा– ये अज्ञान दूर करते हैं और सब प्रकारका बल प्राप्त करते हैं।

५३५ महः ऋतस्य गोपा राजाना— बडे सत्यके संरक्षक ये दोनों राजा हैं। राजा सदा सत्यका संरक्षक होना चाहिये। उसके राज्यमें सत्यनिष्ठको कष्ट नहीं पहुचाने चाहिये।

५३९ अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु– अक्षय श्रेष्ठ बल विश्वका विजय कर सकता है। बलसे विश्वमें विजय होता है।

५४१ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम— सत्यके मार्गसे पापके पार हो जायंगे। सबको उचित है कि वे सत्य मार्गका आश्रय करें और उससे असत्यसे बचावें।

५५४ अनाप्यं क्षत्रं राजानः आशत– शत्रुको अप्राप्य ऐसा प्रभावी क्षात्र तेज ये राजा लोक प्राप्त करते हैं। राजाको उचित है कि वे प्रभावी बल अपने पास बढावें।

इस तरह मित्र तथा वरुण देवताओंमें दो उत्तम राजाओंका दर्शन किया है। दो राजाओंका आपसमें व्यवहार कैसा हो, वे अपने राज्यमें आर्य और दस्युओंको किस तरह पहचानते हैं और आर्योंकी उन्नति और दस्युओंको दबानेका कार्य किस तरह करते हैं, वे अपना बल कैसा बढाते हैं और विश्वमें विजय किस तरह करते हैं आदि अनेक बातोंका उत्तम उपदेश यहां मिलता है। जिसको राजा तथा राजपुरुष व्यवहारमें लाकर सब लोगोंका सुख बढा सकते है।

इन्द्र और वरुण

इन्द्र और वरुण देवताओंमें ऋषि किस आदर्शको देखता है वह अब देखिये—

६५९ विशे जनाय महि शर्म यच्छतं—प्रजाजनोंके लिये बडा शान्तिसुख देदो। प्रजाजनोंको सुख देना यह राजाका तथा शासकोंका कर्तव्य ही है।

'यः पृतनासु दढयः दीर्घ-प्रयुज्यं अतिवनुष्यति, तं जयेम'— जो युद्धमें पराजित करना कठिन है और जो सज्जनोंको अत्यंत कष्ट देता है, उस शत्रुपर विजय प्राप्त करेंगे। प्रजाजनोंमें ऐसा सामर्थ्य बढाना शासकोंका कर्तव्य है। प्रजाजनोंको सामर्थ्यवान् बनाना चाहिये।

६६० अन्यः सम्राट्, अन्यः स्वराट् उच्यते, महान्तौ महावसू वृषणा— एक सम्राट् और दूसरा स्वराट् है, दोनों बडे बलवान् और धनवान् हैं। साम्राज्यका शासक सम्राट् और स्वराज्यका अध्यक्ष स्वराट् कहलाता है। ये दोनों बलवान् सामर्थ्यशाली और बडा कोश-धनकोश-अपने पास रखनेवाले हैं। इन्द्रमें सम्राट्का भाव तथा वरुणमें स्वराट्का भाव ऋषि देख रहा है। यह वर्णन अत्यंत स्पष्ट है। ये राज्यके शासक हैं। साम्राज्य शासन और स्वराज्य शासनके विधानोंमें वस्तुतः भेद है। तथापि वैदिक तत्त्वज्ञानके अनुसार ये दोनों साथ रहते हैं इसलिये इनके दोष दूर होते और गुण ही प्रजाजनोंको प्राप्त होते हैं। इसको बताते हैं—

६६० विश्वे देवासः वां ओजः बलं संदधुः— सब दिव्य विबुध-तुम्हारे राज्यके अन्दर कार्य करनेवाले सब ज्ञानी राजकार्य करनेवाले उपशासक तुम्हारा बल और सामर्थ्य धारण करते और सब मिलकर सामर्थ्य बढाते हैं। इस तरह राज्यशासक और उपशासक प्रजापालनमें तत्पर होकर राज्यका बल बढावें।

६६१ कारवः वस्वः ईशाना हवन्ते– शिल्पी लोग तुम

धनके स्वामियोंको सहायार्थ बुलाते हैं। कारीगर धनपतियोंके पास जाते हैं क्योंकि शिल्पी धन चाहते और धनी शिल्पोंको अपने घरोंमें रखना चाहते हैं । इस तरह ये दोनों परस्परके पोषक हैं। धनी शिल्पियोंकी सहायता करें।

६६४ अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्र वृणोति— एक वीर अपने थोडेसे सैनिकोंसे शत्रुकी बडी भारी सेनाको घेरता है। उसका पराभव करता है। ऐसी वीरता अपने राष्ट्रमें बढानी चाहिये। राष्ट्रके रक्षक वीर ऐसे हों।

६६७ भरे भरे पुरोयोधा भवतं— प्रत्येक युद्धमें आगे जाकर युद्ध करनेवाले शूरवीर बनो। यह आदर्श वीरता है।

६७० कृतध्वजः न समयन्ते— अपने ध्वज ऊपर उठाकर वीर युद्धोंमें लडते हैं। अपना ध्वज ऊपर उठाना और शत्रुके साथ लडना वीरका कर्तव्य है।

६७० आजौ किं च प्रियं न भवति— युद्धसे कुछ भी हित नहीं होता है, यह जानकर जहांतक बन सके वहांतक युद्ध टालना चाहिये। जिस समय युद्ध टलता नहीं उस समय घोर युद्ध करना चाहिये। टालते हुए नहीं टलता फिर युद्ध करना ही चाहिये।

६७७ अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते, अन्यः सदा व्रतानि अभि रक्षते— एक वीर युद्धोंमें बाहरके शत्रुओंसे लडता है और दूसरा वीर सदा लोगोंके व्यवहारोंका सब प्रकारसे संरक्षण करता है। यहां यह कहा है कि सैनिक शत्रुसे लडे और ग्रामरक्षक प्रजाके व्यवहारोंका संरक्षण करे।

६७९ इन्द्रावरुणौ राजानौ— इन्द्र तथा वरुण ये राजा हैं। ६६० वे मंत्रमें एकको सम्राट् और दूसरेको स्वराट् कहा है। ये आदर्श राजा हैं।

६८० युवोः बृहत् राष्ट्रं— तुम दोनोंका बडा भारी राष्ट्र है। विशाल राष्ट्रके ये शासक हैं।

६८० इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्— इन्द्र हमें बडा विस्तृत कार्यक्षेत्र करके देता है। राजा अपने प्रजाजनोंका कार्यक्षेत्र बढावे।

६८४ अरक्षसं मनीषां पुनीथे— आसुरभाव रहित बुद्धिको यह शासक पवित्र करता है।

६८५ युवं अमित्रान् हतं— तुम शत्रुओंका वध करो।

इन इन्द्र तथा वरुणके मन्त्रोंमें ऋषिने दो आदर्श राजाओंका दर्शन किया है। ये राजा अपनी प्रजाको सुख देते, कारीगरोंको बढाते, शिल्पियोंको धन देते, सब राष्ट्रके विद्वानोंको सुरक्षित रखते और उनको विद्याप्रचारमें लगाते, अपने राष्ट्रमें वीरता बढाते, थोडे सैनिकोंसे बडे शत्रुसैन्यका पराभव करते, युद्ध टालनेका यत्न करते, परंतु टलता नहीं तब वे आगे होकर ऐसा युद्ध करते हैं कि सब शत्रु पराभूत होकर भाग जाते हैं। इस तरह राज्यशासनके तत्त्व इन सूक्तोंमें पाठक देख सकते हैं।

इन्द्र और बृहस्पति

इन्द्र और बृहस्पति तथा ब्रह्मणस्पतिके मंत्रोंमें किस आदर्श पुरुषका दर्शन ऋषिने किया है वह अब देखिये—

७६९ देवकृतस्य ब्रह्मणः राजा— यह बृहस्पति दिव्य ज्ञानका राजा है, यह विद्वान् है, ज्ञानी है।

७७० श्रेष्ठं बृहस्पतिः सुवीर्यस्य रायः दात्, अरिष्टान् अतिपर्षत्— श्रेष्ठ बृहस्पति उत्तम पराक्रम करानेवाले धनोंको देता है और उपद्रवोंको दूर करता है। वीर्ययुक्त धन देकर अरिष्टोंको दूर करता है।

७७५ पुरंधीः जिगृतं, अर्यः अरातीः जजस्तं— विशाल बुद्धिका धारण करो और शत्रुके सैनिकोंका नाश करो। ज्ञानसे बुद्धिको विशाल करो और शत्रुओंको दूर करो।

७८० आजिं जयेम, मन्यमानान् योधयाः, शासदानान् साक्षाम— युद्धको जीतेंगे, घमंडी शत्रुसे लडेंगे, हिंसक शत्रुओंका पराभव करेंगे।

इस तरह इन्द्र और बृहस्पतिके मंत्रोंमें वीरों और ज्ञानियोंका आदर्श ऋषिने देखा है।

पर्जन्यः और मण्डूक

पर्जन्य देवतामें ऋषिने किस आदर्शको देखा है वह अब देखिये-

७९९ ओषधीनां वर्धनः— औषधि वृक्ष वनस्पतियोंकी वृद्धी करनेवाला।

८०१ यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः— जिसमें सब भुवन रहते हैं, जिसके आधारसे सब भुवन रहते हैं।

८०३ स रेतोधा वृषभः— वह वीर्यधारक बलवान् है। ऐसा ऊर्ध्वरेता तथा बलवान बनना चाहिये।

८०७ व्रतचारिणः ब्राह्मणाः संवत्सरं शशयानाः वाचं अवादिषुः— एक वर्षतक व्रतपालन करनेवाले ब्राह्मण मंत्रघोष करने लगे हैं। व्रतपालन करनेसे शक्ति बढती है।

पर्जन्य तथा मण्डूक देवतामें ऋषिने ब्रह्मचारी, ऊर्ध्वरेता, तपश्चरण करनेवाले व्रतधारीका दर्शन किया है। ऊर्ध्वरेता तरुणका वर्णन इसमें पाठक देख सकते हैं। इसी तरह सबको आश्रय देनेवाले राजा तथा अपने राष्ट्रमें औषधियों और वृक्ष वनस्पतियोंका संवर्धन करनेवाले राष्ट्रशासकको ऋषिने पर्जन्यमें देखा है। यही काव्य है। क्रान्तदृष्टिसे ऋषि ऐसा देखते हैं।

अश्विनौ

अश्विनौ देवताके मंत्रोंमें अनेक बोध मिलते हैं। प्रथमके मंत्रमें अश्विनौको **' नृ-पती '** (५६३) कहा है। अर्थात् राजाका आदर्श ऋषि इसमें देखता है।

५६४ तमसः अन्ताः उपाश्नन्— अन्धकारके अन्तका अर्थात् अज्ञान दूर होने और ज्ञानप्रकाश प्राप्त होनेका यह अनुभव है।

५६६ माध्वी अश्विना— मधुरभाषी, मधुरदर्शनी अश्विदेव हैं। मनुष्योंको भी आनन्दप्रसन्न, मधुरभाषणी तथा मधुरदर्शनी होना चाहिये।

५७० भुरणा अश्विना- भरणपोषण करनेवाले अश्विदेव हैं। राजाको भी उचित है कि वह प्रजाका भरणपोषण करनेमें दत्तचित्त रहे।

५७२ रत्नानि धत्तं, सूरीन् जरतं— रत्नोंको देदो और विद्वानोंकी प्रशंसा करो। ज्ञानियोंकी सराहना करना योग्य है।

५७४ अर्यः तिरः- शत्रुओंको दूर करो।

६०१ जरसः च्यवानं अमुमुक्तं- बुढापेसे च्यवनको मुक्त करके उसे तरुण बनाया। इसी तरह बुढापा दूर करना चाहिये। वृद्ध अवस्थामें भी तारुण्य रहे ऐसा प्रयत्न करना चाहिये

६०७ पाञ्चजन्येन राया विश्वतः आयातं— पांचों जनोंका हित करनेवाला धन लेकर चारों ओरसे आओ। धन सब पांचोंजनोंका हित करनेवाला हो। किसी एक ही जातीका हित करनेवाला और दूसरोंको दरिद्रतामें रखनेवाला न हो।

६१८ जनानां नृपातारः अवृकासः- जनताका पालन करनेवाले शासक क्रूर न हों। शान्तचित्त हों और अपने संरक्षणके कार्यमें दत्तचित्त रहें।

कवि अश्विनौ देवताके अन्दर किस आदर्शका दर्शन करता है वह इन मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं। अश्विनौ देव वास्तवमें चिकित्सक हैं। वृद्धोंको तरुण बनाते, वंध्याको बच्चे देने योग्य बनाते, दूध न देनेवाली गौको दुधारू बनाते, ऐसे इनके शुभ कार्य वेदोंमें सुप्रसिद्ध हैं।

इनका वर्णन राजा तथा शासक करके भी वेदमंत्रोंमें है। ये युद्ध करते हैं, शत्रुका पराभव करते हैं, अपने पक्षवालोंका संरक्षण करते हैं। जनताको उत्तम अन्न देते हैं और लोगोंको पुष्ट करते हैं। हृष्टपुष्ट करनेमें ये प्रवीण हैं। इस तरह इनके अन्दर उत्तम शासकोंका कर्तव्य भी दिखाई देता है। इस तरह अश्विनौ देवताके मन्त्र राष्ट्रशासकका कर्तव्य भी बताते हैं।

विश्वेदेवाः

एक ही मन्त्रमें अनेक देवोंका वर्णन आनेसे उसका देवता ' विश्वेदेवाः ' माना जाता है। ' विश्वे देवाः ' के माने ' सर्वे-देवाः ' अर्थात् सब देव। इस देवताके मंत्रोंमें अनेक आदर्शोंका समावेश हुआ है। वह अब देखिये—

३१२ समत्सु त्मना वीरं हिनोत— युद्धोंमें स्वयं-स्फूर्तिसे वीर जाय। ऐसा उत्साह राष्ट्रमें बढाना चाहिये।

३१३ शुष्मात् भानुः उदार्त, पृथिवी भारं बिभर्ति- अपने बलसे सूर्य उदय होता है और पृथिवी भारका धारण करती है। बलके बिना इस संसारमें कुछ भी नहीं होता।

३१५ देवीं धियं दधिध्वं, देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं- दिव्य बुद्धिका धारण करो और दिव्यगुणवाली वाणी बोलो।

अपनी बुद्धि और अपनी वाणी शुद्ध तथा दैवी गुणोंसे युक्त होनी चाहिये।

३३५ सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु— सत्पुरुषोंके उत्तम कर्म हमारे लिये शान्ति बढानेवाले हों। कदाचित् ऐसा बनता है कि बडे लोग उत्तम कर्म तो करते हैं, पर उससे अशान्ति हो जाती है और जनताको कष्ट पहुंचते हैं। इसलिये सत्पुरुषोंपर बडा दायित्व है। वे अपने कर्मोंका परिणाम क्या हो रहा है उसका विचार करें। और शान्ति करनेवाले ही कर्म करें।

४०९ नर्या पुरूणि हस्ते दधानः- मानवोंका हित करनेवाले धन हाथमें धारण करता है। दान देनेकी इच्छासे हाथमें बहुतसा धन धारण करता है। इस तरह मुक्तहस्तसे धनका दान करना चाहिये।

४१३ (स्थिर धन्वा) बलवान् धनुष्य धारण करनेवाला, (क्षिप्रेषुः) शीघ्र बाण छोडनेवाला, (स्व-धा-वान्) अपनी शक्तिसे युक्त, (अ-षाळ्हः) असह्य आक्रमण करनेवाला, (सहमानः) शत्रुके आक्रमण सहकर अपने स्थानपर रहनेवाला, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण शस्त्रवाला, यह वीरका वर्णन है। ऐसे वीर अपने राष्ट्रमें होने चाहिये।

इस तरह विश्वेदेवा देवताके मंत्रोंमें आदर्श पुरुषका वर्णन है। ये सब आदर्श मनुष्योंको अपने सामने रखनेयोग्य है। मनुष्य इन आदर्शोंको अपने सामने रखे और अपने अन्दर इन आदर्शोंको धारण करे। देवताओंके समान बनना चाहिये। 'जैसा देवता आचरण करते हैं वैसा हमें बनना है।' इस तरह आदर्शका विचार हुआ। प्राय सब देवोंका विचार संक्षेपसे यहा आगया है। कुछ छोटे देवता रहे हैं उनके मंत्रोंसे बोध पाठक स्वयं ले सकते हैं।

॥ यहां आदर्श पुरुषके दर्शनका विचार समाप्त है ॥

वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंके
सुभाषितोंका संग्रह

(ऋ० ७।१)

१ नरः प्रशस्तं दूरे दृशं अथर्यं गृहपतिं दीधितिभिः जनयन्त— नेता लोग प्रशंसा करनेयोग्य, दूरदर्शी, प्रगतिशील गृहस्थीको तेजस्विताओंके साथ निर्माण करते हैं।

२ सुप्रतिचक्षं दक्षाय्यः (यं) अवसे अस्ते न्यृण्वन्— दर्शनीय सुंदर बलवान् वीरको संरक्षणके लिये घरमें रखते हैं।

३ हे यविष्ठ ! अजस्रया सूर्म्या पुरः दीदिहि— हे बलवान् वीर ! अपने प्रचण्ड तेजसे अपने नगरको प्रकाशित कर।

४ द्युमन्तः सुवीरासः वरं प्र निः शोशुचन्त— तेजस्वी उत्तम वीर अपनी श्रेष्ठताके साथ प्रकाशते रहते हैं।

४ सुजाता नरः समासते— कुलीन पुरुष संघटित रहते हैं।

५ सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं नः धिया दाः— उत्तम वीरभावसे युक्त, उत्तम पुत्रपौत्रोंसे युक्त प्रशंसित धन हमें बुद्धिके साथ दे दो।

५ यातुमावान् यावा यं रयिं न तरति— हिंसक डाकू जिस धनको लूट नहीं सकता (ऐसा धन हमें दो)।

६ सुदक्षं घृताची युवतिः दोषावस्तोः उपैति— उत्तम, दक्ष, बलवान् तरुणके पास उत्तम अन्न लेकर तरुणी रात्रीमें तथा दिनमें जाती है।

६ सुदक्षं स्वा वसूयुः अरमतिः— बलवान् दक्ष तरुणके पास अपनी धन लानेवाली बुद्धि रहती है (इसके पास तरुणी जाती है)।

७ विश्वा अरातीः तपोभिः अपदह— सब शत्रुओंको अपने तेजोंसे जला दो (दूर करो)।

७ जरूथं अदहः— कठोर भाषीको जला दो (दूर करो)।

७ अमीवां निःस्वरं प्रचातयस्व— रोगको निःशेष दूर कर।

८ दीदिवः पावकः शुक्रः— तेजस्वी शुद्ध वीर बलिष्ठ (होता है)।

८ यो अनीकं आ इधते— जो अपनी सेनाको तेजस्वी करता है (वह वीर है।)

९ पित्र्यासः मर्ता नरः अनीकं पुरुत्रा विभेजिरे— संरक्षक मानवी वीर अपनी सेनाको अनेक स्थानोंमें विभक्त करके रखते हैं।

९ इह सुमनाः स्याः— यहां आनन्द प्रसन्न रह।

१० प्रशस्तां धियं पनयन्त— प्रशंसित बुद्धिका वर्णन करते हैं।

१० वृत्रहत्येषु शूराः नरः— युद्धोंमें शूर पुरुष नेता होते हैं।

१० विश्वा अदेवी माया अभिसन्तु— सब राक्षसी कपटजालोंको दूर करो।

११ शूने मा निषदाम— पुत्र, पौत्ररहित घरमें हम न रहें।

११ दुर्यः— घरका हित करनेवाला बन।

११ नृणां अशेषस अवीरता मा— मनुष्योंके बीच हम पुत्ररहित, वीरतारहित न हों।

११ प्रजावतीषु दुर्यासु परि निषदाम— पुत्रयुक्त घरोंमें हम रहेंगे।

१२ प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं— सेवकोंसे युक्त, बालबच्चोंसे भरा औरस सन्तानोंसे बढनेवाला घर हो।

१३ अजुष्टात् रक्षसः नः पाहि— दुष्ट राक्षसोंसे हमारा संरक्षण हो।

१३ अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि— दुष्ट, पापी, धूर्तसे हम सुरक्षित हों। (सुभाषित संख्या २६)

११ पृतनायून् अभिष्यां— सेनासे आक्रमण करनेवाले शत्रुका हम पराभव करेंगे ।

१४ वाजी वीळुपाणिः सहस्रपाथः तनयः— बलवान्, सुदृढ, शस्त्रधारी सहस्रों धनोंसे युक्त पुत्र हो ।

१४ तनयः अक्षरा समेति— पुत्र विद्या सीखता रहे।

१४ अग्निः अग्नीन् अत्यस्तु— हमारा अग्निके समान तेजस्वी पुत्र अन्य पुत्रोंसे श्रेष्ठ बने।

१५ यः समेद्धारं वनुष्यतः निपाति-- जो जगाने-वालेको हिंसकोंसे बचाता है (वह श्रेष्ठ है ।)

१५ यः उरुष्यात् पापात् निपाति-- जो बडे पापोंसे बचाता है । (वह श्रेष्ठ है ।)

१५ सुजातासः वीराः यं परिचरन्ति-- उत्तम कुलीन वीर जिसकी सेवा करें (वह श्रेष्ठ है । ऐसा हमारा पुत्र हो ।)

१७ ईशानासः मियेधे भूरि आवहनानि जुहुयाम- हम स्वामी बनकर यज्ञमें बहुत हवनाहुतियोंका हवन करेंगे।

१८ सुरभीणि वीततमानि हव्या- सुगन्धयुक्त तथा प्रसन्नता बढानेवाले हवनीय पदार्थ हो ।

१९ अवीरता नः मा दाः- वीर संतान न होनेका कष्ट हमें न हो ।

१९ दुर्वाससे नः मा दाः- बुरा वस्त्र पहननेका दुर्भाग्य हमें न प्राप्त हो ।

१९ अमतये नः मा दाः- बुद्धिहीनता हमें प्राप्त न हो।

१९ क्षुधे नः मा दाः-- भूख हमें कष्ट न देवे ।

१९ रक्षसे नः मा दाः- राक्षस हमें कष्ट न दें ।

१९ दमे वने वा नः मा आजुहूर्थाः- घरमें तथा वनमें हमारा नाश न हो ।

२० मे ब्रह्माणि शशाधि-- मुझे ज्ञान प्राप्त हो ।

२१ तनये मा आधक्- पुत्रको अग्निकी बाधा न हो।

२१ वीरः नर्यः असन् मा विदासीत्-लोगोंका हित-कर्ता पुत्र हमसे दूर न हो ।

२१ सुहवः रण्वसंदृक् सहसः सूनुः- प्रेमसे बुलाने योग्य सुन्दर बलवान् पुत्र हो ।

२२ सचा दुर्मतये मा प्रवोचः— कोई मित्र अपने साथियोंके भरणपोषणमें बाधा डालनेका भाषण न करे ।

२२ दुर्मतयः मा— दुष्ट बुद्धियां (हमें बाधा) न (करें।)

२२ भ्रमात् चित् सचा मा नशन्त— भ्रमसे भी कोई मित्रका नाश न करें।

२३ अर्थी सूरिः यं पृच्छमानः एति स मर्तः रेवान्— धनप्राप्तिकी इच्छा करनेवाला जिसके विषयमें पूछताछ करता हुआ जिसके पास जाता है, वह मनुष्य सच्चा धनवान् है ।

२३ स्वनीकः (सु-अनीकः)-अपने पास उत्तम सेना हो।

२४ महो सुवितस्य विद्वान्— बडे कल्याणका मार्ग जान लो।

२४ सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आवह — ज्ञानियोंको बडा धन दो ।

२४ आयुषा अविक्षितासः सुवीराः मदेम— आयुसे क्षीण न होकर उत्तम शूर बनकर आनन्द प्रसन्न रहेंगे।

२६ बृहत् शोच— बहुत प्रकाशित हो ।

(सू. ७१)

२६ दिव्यं सानु रश्मिभिः उपस्पृश-दिव्य उच्चताको अपने किरणोंसे स्पर्श करो । (अपने तेजसे उच्चता प्राप्त करो ।)

२७ सुक्रतवः शुचयः धियंधाः— उत्तम कर्मकुशल लोग पवित्र होकर बुद्धिमान् होते हैं।

२७ नराशंसस्य यजतस्य महिमानं उपस्तोषाम- वीरों द्वारा प्रशंसित पवित्र नेताकी महिमा हम गाते हैं ।

२८ ईळेन्यं असुरं सुदक्षं सत्यवाचं अध्वराय सद इत् संमहेम— प्रशंसायोग्य, बलवान्, उत्तम कर्तव्यमें दक्ष, सत्यभाषी नेताकी हिंसारहित अर्थात् शान्तिवर्धक कर्मके लिये सदा हम प्रशंसा करते हैं ।

३० स्वाध्याः देवयन्तः— उत्तम अध्ययनपूर्वक ध्यान-धारणा करनेवाले दिव्य गुणोंसे युक्त होते हैं ।

३१ दिव्ये योषणे मही बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी यज्ञिये सुविताय आश्रयेतां— दिव्य स्त्रियां, जो बडी सभाओंमें बैठती हैं, प्रशंसित और धनवाली होकर पूजनीय होती हैं, उनका आश्रय अपने कल्याणके लिये करो। (सुभा० ६०)

३१ विप्रा जातवेदसा मानुषेषु कारू— ज्ञानी विद्वान् मनुष्योंमें प्रशस्त कार्य करनेवाले होते हैं।

३२ अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं — कुटिलतारहित कर्म अधिक श्रेष्ठ बनाओ।

३३ भारतीभिः भारती सजोषा— उपभाषाओंके साथ भारती भाषा सेवनीय है।

३३ देवैः मनुष्येभिः इळा सजोषा— दिव्य गुण संपन्न मानवोंके साथ मातृभूमी सेवाके योग्य है।

३३ सारस्वतेभिः सरस्वती सजोषा— सरस्वतीके भक्तोंके साथ सरस्वती सेवनीय है।

३४ यतः कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः वीरः जायते, तत् तुरीयं पोषयित्नु विष्यस्व— जिससे कर्ममें प्रवीण, उत्तम दक्ष श्रद्धावान् वीर पुत्र निर्माण होता है, वह त्वरासे पोषण करनेवाला वीर्य हमारे शरीरमें बढे।

३५ सत्यतरः देवानां जनिमानि वेद- सत्यपर अधिक निष्ठा रखनेवाला देवोंके जन्मवृत्तान्त जानता है।

३६ सुपुत्रा अदितिः बर्हिः आस्तां- अदितिमाताके उत्तम पुत्र हैं इसलिये वह सन्मानित होकर आसनपर बैठे।

३६ तुरेभिः देवैः सरथं आयाहि- त्वरासे सत्कर्म करनेवाले विबुधोंके साथ एक रथमें बैठकर आओ।

(ऋ० ७।३)

३७ ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः— सत्यनिष्ठ तेजस्वी घी खानेवाला पवित्र वीर होता है।

३८ अस्य शोचिः अनुवातः अनुवाति- अग्नि अधिक प्रदीप्त होनेपर वायु उसके अनुकूल बहने लगता है (जो अग्नि थोडा होनेकी अवस्थामें उसे बुझा देता था।)

४० ते पाजः पृथिव्यां तृषु व्यश्रेत्— तेरा तेज पृथिवीपर शीघ्र फैल जाय (ऐसा प्रयत्न कर।)

४१ अतिथिं दोषा उषसि मर्जयन्तः— अतिथिकी रात्रीमें और सवेरे सेवा करो।

४१ स्वनीक ! यत् रुक्मः रोचसे, ते प्रतीकं सुसंदृक्- हे उत्तम सेनापते ! जब तू प्रकाशता है, तब तेरा रूप अत्यंत सुंदर दीखता है।

४३ अमितैः महोभिः शतं आयसीभिः पूर्भिः नः पाहि— अपरिमित सामर्थ्योंके साथ सैकडों लोहमय कीलोंसे हमारा रक्षण करो।

४४ सहसः सूनो जातवेदः ! नः सूरीन् नि पाहि- हे बलपुत्र ज्ञानी वीर ! हमारे ज्ञानियोंका संरक्षण कर।

४५ पूता शुचिः स्वधितिः रोचमानः- पवित्र शस्त्र तेजस्वी होता है।

४६ सुचेतसं क्रतुं वतेम-उत्तम बुद्धिमान तथा उत्तम कर्म करनेमें प्रवीण पुत्र हमें प्राप्त हो।

४६ स्वस्तिभिः नः पातं— कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमें सुरक्षित कर।

(ऋ० ७।४)

४७ शुक्राय भानवे सुपूतं हव्यं मतिं च प्रभरध्वं- वीर्यवान् तेजस्वी वीरके लिये पवित्र अन्न और प्रशंसाके भाषण अर्पण करो।

४८ तरुणः गृत्सः अस्तु— तरुण ज्ञानी हो।

४८ मातुः यविष्ठः अजनिष्ट- मातासे बलवान पुत्र होवे।

४८ शुचिदन् भूरि अन्नं समत्ति— शुद्ध दांतवाला वीर बहुत अन्न खाता है।

४९ अनीके संसदि मर्तासः पौरुषेयीं गृभं न्युवोच- सैनिक वीरोंकी सभामें युद्धमें मरनेके लिये तैयार हुए वीर पौरुषकी ही बातें करते हैं।

५० अमृतः प्रचेताः कविः अकविषु मर्तेषु निधायि- अमर ज्ञानी कवि अज्ञानी मनुष्योंमें रहता है (और उनको ज्ञान देता है।)

५० हे सहस्वः ! त्वे सुमनसः स्याम— हे विजयी वीर ! तुम्हारे साथ हम प्रसन्न चित्तसे रहेंगे।

५१ यः कृत्वा अमृतान् अतारीत्, स देवकृतं योनिं आससाद— जो अपने प्रयत्नसे श्रेष्ठ विबुधोंका तारण करता है, वह दिव्य श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है।

५२ सुवीर्यस्य रायः दातोः ईशे— वह उत्तम वीर्य युक्त धनका दान करनेमें समर्थ है।

५१ अवीरा वयं त्वा मा परिषदाम— पुत्रहीन होकर हम तेरी सेवा करनेके लिये न बैठें। (पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर हम प्रभुकी भक्ति करें।)

५१ अ-प्सवः मा, अदुवः मा— हम सुरूपरहित न हों, और भक्तिहीन भी न हों।

५३ अरणस्य रेक्णः परिषद्यं— ऋणरहित मनुष्यका धन पर्याप्त होता है। (अतः हम ऋणरहित हों।)

५३ नित्यस्य रायः पतयः स्याम- हम स्थायी धनके स्वामी हों।

५३ अन्यजातं शेषः नास्ति— दूसरेका पुत्र औरस नहीं कहलाता।

५३ अचेतानस्य पथः मा विदुक्षः— निर्बुद्धके मार्गसे हम न जांय।

५४ अन्योदर्यः सुसेवः अरणः ग्रभाय नहि— दूसरेका पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला, ऋण न करनेवाला होनेपर भी, औरसपुत्र करके स्वीकार करनेयोग्य नहीं होता।

५४ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहि— दूसरेका पुत्र औरस करके माननेयोग्य नहीं है।

५४ सः अन्योदर्यः ओकः एति— वह दूसरेका पुत्र अपने (पिताके) घरको ही जायगा।

५४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु— नवीन उत्साही बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला औरसपुत्र हमें प्राप्त हो।

५५ वनुष्यतः अवद्यात् पाहि— हिंसक पापीसे बचाओ।

५५ स्वसम्वत् पाथः अभ्येतु- निर्दोष अन्न प्राप्त हो।

५५ स्पृहाय्यः सहस्री रयिः समेतु- स्पृहणीय सहस्रों प्रकारका धन हमें प्राप्त होता।

(ऋ० ७।५)

५८ वैश्वानरः मानुषीः विशः अभिविभाति- विश्वका नेता मानवी प्रजाओंको प्रकाशित करता है।

५९ हे वैश्वानर ! त्वाद्भिया असिक्नीः प्रजाः भोजनानि अहातीः असमनाः आयन्— हे सबके नेता वीर ! तेरे भयसे भयभीत हुई काली प्रजाएँ अपने भोजन छोडकर तितर बितर होकर भागने लगीं हैं।

५९ पूरवे शोशुचानः पुरः दरयन् अदीदेः- नागरिकोंके लिये प्रकाशित होनेवाला वीर शत्रु नगरियोंको तोडकर अधिक तेजस्वी होता है।

६० अजस्रेण शोशुचा शोशुचानः- विशेष प्रकाशसे प्रकाशित हो।

६१ कृष्टीनां पतिं, रयीणां रथ्यं, वैश्वानरं गिरः सचन्ते— प्रजाओंके पालक, धनोंके संचालक सबके नेताकी स्तुति वाणियां गाती है।

६२ आर्याय ज्योतिः जनयन्- आर्योंको प्रकाश उत्पन्न किया।

६२ दस्यून् ओकसः आजः-दस्युओंको घरोंसे भगाया।

६३ हे जातवेदः ! त्वं भुवना जनयन्— हे वेदके प्रकाशक! तूं भुवनोंको उत्पन्न करता है।

६४ द्युमतीं इषं अस्मे आ ईरयस्व-तेजस्वी धन हमें दो।

६४ पृथु श्रवः दाशुषे मर्त्याय— बडा यश दाता मानवको दो।

६५ पुरुक्षुं रयिं, श्रुत्यं वाजं, महि शर्म यच्छ— बहुत यशके साथ धन, कीर्ति बढानेवाला बल और बडा सुख दो।

(ऋ० ७।६)

६६ दारुं वन्दे-शत्रुके विदारक वीरको मैं प्रणाम करता हूं।

६६ कृष्टीनां अनुमाद्यस्य असुरस्य पुंसः सम्राजः तवसः कृतानि विवक्ति- प्रजाजनोंद्वारा अनुमोदित बलवान् पुरुषार्थी सम्राट्के बलसे किये वीरताके कृत्योंका मैं वर्णन करता हूं।

६७ अद्रेः धासिं, भानुं, कविं, शं राज्यं पुरंदरस्य महानि व्रतानि गीर्भिः आ विवासे- कीलोंका धारण कर्ता, तेजस्वी, ज्ञानी, सुखदायी राज्यशासन करनेवाले, शत्रु-नगरोंका भेदन करनेवाले वीरके बडे पुरुषार्थी कृत्योंका वर्णन मैं करता हूं।

६८ अक्रतून्, ग्रथिनः, मृध्रवाचः पणीन्, अश्रद्धान्, अवृधान्, अयज्ञान् दस्यून् प्र विवाय, अपरान् चकार— सत्कर्म न करनेवाले, वृथाभाषी, हिंसक, सूदका व्यवहार करनेवाले, अश्रद्ध, हीन, यज्ञ न करनेवाले डाकुओंको दूर करें और हीन अवस्थाको पहुंचा देवें। (सुभा० सं० ११६)

६९ नृतमः अपाचीने तमांसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार— उत्तम नेता अज्ञानान्धकारमें पड़ी प्रजाको अपने सामर्थ्योंसे ज्ञानाभिमुख करता है।

६९ वस्वः ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे— धनके स्वामी, संयमी तथा सेनासे आक्रमण करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले वीरकी प्रशंसा होती है।

७० वधस्नैः देह्यः अनमयत्— वह शस्त्रोंसे गुण्डोंको नम्र करता है।

७१ विश्वे जनासः शर्मन् यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः— सब लोग सुखके लिये जिसकी सद्बुद्धिकी अपेक्षा करते हैं (वह श्रेष्ठ वीर है।)

७१ वैश्वानरः वरं आससाद- सब जनोंका हित करनेवाला श्रेष्ठ स्थानपर बैठता है।

७२ वैश्वानरः बुध्न्या वसूनि आददे- सब जनोंका हित करनेवाला मूल आधाररूप धनोंको प्राप्त करता है (और उनसे जनहित करता है।)

(ऋ० ७।७)

७३ सहमानं प्र हिंषे- शत्रुका पराभव करनेवाले वीरको मैं प्रेरित करता हूं (वह शत्रुका पराभव करे।)

७६ विचेतसः मानुषासः- विशेष बुद्धिमान मनुष्य हों।

७६ मन्द्रः मधुवचा ऋतावा विश्पतिः विशां दुरोणे अधायि-- आनन्द बढानेवाला मधुरभाषणी, ऋजुगामी प्रजापालक प्रजाओंके मध्यस्थानमें स्थापित हुआ है।

७७ ब्रह्मा विधर्ता नृषदने असादि- ब्रह्मा विशेष कर्म करनेवाला होकर मनुष्योंकी सभामें विराजता है।

(ऋ० ७।८)

८० अर्यः राजा समिन्धे- श्रेष्ठ राजा प्रकाशता है।

८१ अयं मन्द्रः यह्वः मनुषः सुमहान् अवेदि-- यह सुखदायी महान वीर मानवोंमें अत्यंत श्रेष्ठ करके प्रसिद्ध है।

८२ दुष्टरस्य साधोः रायः पतयः भवेम-- शत्रुके लिये अप्राप्य उत्तम धनके स्वामी हम बनें।

८३ पृतनासु पुरु अभितस्थौ— युद्धके समय पूर्ण प्रबल शत्रुका सामना यह करता रहा (ऐसा यह वीर है।)

८४ विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः भुवः- सब सैनिकोंके साथ प्रसन्नतासे बर्ताव कर।

८४ स्वयं तन्वं वर्धस्व- अपने शरीरको बढाओ।

८५ द्युमत् अमीवचातनं रक्षोहा आपये शं भवाति- वह तेजस्वी, रोग दूर करनेवाला, राक्षसोंको दूर करनेवाला, तथा बांधवोंके लिये सुखदायी होता है।

(ऋ० ७।९)

८७ जारः मन्द्रः कवितमः पावकः उषसां उपस्थात् अबोधि-वृद्ध, आनन्द बढानेवाला, उत्तम कवि पवित्र वीर उष:कालके पहिले उठता है।

८७ उभयस्य केतं दधाति- दोनों श्रेष्ठ कनिष्ठोंको ज्ञान देता है।

८७ सुकृत्सु द्रविणं-- अच्छा कर्म करनेवालेको धन देता है।

८८ सुक्रतुः पणीनां दुरः वि- उत्तम कर्म करनेवाला वीर चोरोंके द्वार खोलता है।

८८ मन्द्रः दमूनाः विशां तमः तिरः ददृशे-आनन्ददायी संयमी वीर प्रजाजनोंके अन्धकारको दूर करता हुआ दीखता है।

८९ अमूरः सुसंसत् मित्रः शिवः चित्रभानुः कविः अग्रे भाति- अमूढ उत्तम साथी मित्र कल्याणकारी विशेष तेजस्वी कवि अग्रभागमें प्रकाशता है (नेता होता है।)

९० मनुषः युगेषु ईळेन्यः समनगाः अशुचत्- मनुष्योंके संमेलनमें प्रशंसा होनेयोग्य वीर युद्धस्थानमें जाकर अग्रभागमें प्रकाशता है।

९१ गणेन ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः- संघसे ज्ञान प्रसार करनेवालोंका विनाश नहीं होता।

९१ जरूथं हन्— कठोर भाषण करनेवालेको ताडन कर।

९२ पुरंधिं राये यक्षि— बहुत बुद्धिवालेका धन देकर सत्कार कर।

९२ पुरुनीथा जरस्व- विशेष नीतिमानोंकी प्रशंसा कर।

(ऋ० ७।१०)

९३ पृथु पाजः अश्रेत्- विशेष तेज धारण करे।

९३ शुचिः वृषा हरिः— पवित्र बलवान् दुःखहरण करनेवाला वीर।

९३ धियः हिन्वानः भासा आभाति— बुद्धिसे सबको शुभ प्रेरणा करनेवाला अपने तेजसे प्रकाशित होता है।

९४ विद्वान् देवयावा वनिष्ठः— ज्ञानी दिव्य विबुधोंके साथ रहनेवाला प्रशंसनीय दाता होता है।

९५ मतयः देवयन्तीः— बुद्धियां दिव्यता प्राप्त करनेवाली हों।

९५ द्रविणं भिक्षमाणा गिरः सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं मनुष्याणां अरातिं अच्छ यन्ति- धनकी इच्छा करनेवाली वाणियाँ दर्शनीय सुरूप प्रगतिशील मानवोंमें श्रेष्ठ वीरकी प्रशंसा करें।

९७ उशिजः विशः मंद्रं यविष्ठं ईळते- सुख चाहनेवाली प्रजा आनन्द प्रसन्न तरुण वीरकी प्रशंसा करती है।

(ऋ० ७।११)

९८ अध्वरस्य महान् प्रकेतः— हिंसारहित कर्मका बडा सूचक ध्वज जैसा हो।

९९ यस्य बर्हिः देवैः आसदः अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति- जिसके आसनपर दिव्य विबुध बैठते हैं उसके लिये सब दिन शुभदिन ही होते हैं।

१०० अभिशस्तिपावा भव- शत्रुओंसे रक्षण करनेवाला हो।

(ऋ० ७।१२)

१०२ स्वे दुरोणे दीदिहि- अपने स्थानमें प्रकाशता रह।

१०३ चित्रभानुं विश्वतः प्रत्यञ्चं यविष्ठं नमसा अगन्म— तेजस्वी सब ओरसे सेवाके योग्य तरुण वीरका हम नमस्कारसे स्वागत करते हैं।

१०४ महा विश्वा दुरितानि साह्वान्— अपने बडे सामर्थ्योंसे सब दुरवस्थाओंको दूर कर।

१०४ सः दुरितात् अवद्यात् नः रक्षिषत्- वह सब पापों और निंदित कर्मोंसे हमारा रक्षण करे।

१०५ वसु सुपणानि सन्तु- धन स्वीकारने योग्य हो।

(ऋ० ७।१३)

१०६ विश्वशुचे धियंधे असुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वं— विश्वमें पवित्र, बुद्धियोंके धारणकर्ता, राक्षसोंके विनाशक वीरके लिये प्रशंसाके वाक्य बोलो और उसके आदरार्थ शुभ कर्म करो।

१०७ त्वं शोशुचा शोशुचानः रोदसी आपृण— तूं अपने तेजसे प्रकाशित होकर विश्वको प्रकाशित कर।

१०७ त्वं अभिशस्तेः अमुञ्चः- तूं शत्रुओंसे बचाओ।

१०७ जातवेदा वैश्वानरः- ज्ञानी विश्वका नेता होता है।

१०८ जातः परिज्मा इर्यः— उत्पन्न होनेपर चारों ओर भ्रमण करो और सबको शुभकर्मकी प्रेरणा दो।

१०८ पशून् गोपाः— पशुओंकी पालना करो।

१०८ भुवना व्यख्यः— भुवनोंका निरीक्षण करो।

१०८ ब्रह्मणे गातुं विंद— ज्ञानप्रसारका मार्ग जानो।

(ऋ० ७।१४)

१०९ शुक्रशोचिषे जातवेदसे दाशेम— तेजस्वी ज्ञानीको दान देंगे।

(ऋ० ७।१५)

१११ यः नः नेदिष्ठं आप्यं, उपसद्याय मीळ्हुषे जुहुत- जो हमारा समीपका बन्धु है, उसके पास जानेयोग्य सहायक वीरके लिये दान दो।

११३ पञ्च चर्षणीः दमे दमे कविः युवा गृहपतिः निषसाद— पांचों ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषादोंके घर-घरमें ज्ञानी तरुण गृहस्थी रहता है।

११४ स विश्वतः नः रक्षतु, अंहसः पातु— वह सब ओरसे हमारी सुरक्षा करे और हमें पापसे बचावे।

११६ श्रियः वीरवतः रयिः दृशे स्पार्हाः- सुशोभित वीरतायुक्त धन ही देखनेके लिये सुन्दर है।

११८ द्युमन्तं सुवीरं निधीमहि— तेजस्वी उत्तम वीरको यहां रखते हैं।

११९ अस्मयुः सुवीरः— उत्तम वीर हमारे पास रहे।

१२० विप्रासः नरः धीतिभिः सातये उपयन्ति- ज्ञानी नेतागण अपनी उत्तम धारणावती बुद्धियोंके साथ धनका बंटवारा करनेके लिये इकट्ठे होते हैं।

१२१ शुक्रशोचिः शुचिः पावकः ईड्यः— बल और तेजसे युक्त स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाला वीर प्रशंसायोग्य है।

१२२ ईशानः नः राधांसि आभर--ईश्वर हमें धन देवे।

१२३ भगः वार्यं दातु-भाग्यवान् देव उत्तम धन हमें देवे।

(सुभा० सं० १७८)

११३ वीरवत् यशः वार्यं च दातु— वह हमें वीरता युक्त यश तथा स्वीकार करनेयोग्य धन देवे ।

११४ नः अंहसः रक्ष— हमें पापसे बचाओ ।

११४ रिषतः तपिष्ठैः दह— विनाशकोंको ज्वालाओंसे जला दे ।

१२५ अनाधृष्टः नृपीतये शतभुजिः मही आयसीः पूः भव- पराभूत न होकर तू हमारे मानवोंके संरक्षण करनेके लिये सैंकडों वीरोंसे सुरक्षित लोहेके कीले जैसा रक्षक हो ।

१२६ हे अदाभ्य! दिवानक्तं अंहसः अघायतः नः पाहि— हे अदम्य वीर! दिनरात पापसे तथा पापियोंसे हमें बचाओ ।

(ऋ० ७।१६)

१२७ ऊर्जः न-पातं प्रियं चेतिष्ठं अरतिं स्वध्वरं विश्वस्य अमृतं दूतं नमसा आहुवे— बलका नाश न करनेवाले, प्रिय उत्तेजना देनेवाले प्रगतिशील, उत्तम हिंसारहित कार्य करनेवाले सबके अमर सहायकको नमस्कार करके बुलाते है ।

१२८ विश्वभोजसा अरुषा सुब्रह्मा सुशमी जनानां राधः योजते— सबको भोजन देनेके सामर्थ्यसे युक्त उत्तम ज्ञानी और संयमी वीर लोगोंको धन देनेकी योजना करता है ।

१३० विश्वा मर्तभोजना रास्व— सब मानवी भोग दे दो ।

१३३ सूरयः प्रियासः सन्तु—विद्वान् सबको प्रिय हों।

१३३ मघवानः यन्तारः जनानां गोनां ऊर्वान् दयन्त— धनी लोग दान देनेके समय लोगोंको गौओंके झुण्ड दान दें ।

१३४ द्रुहः निदः त्रायस्व- द्रोही निंदकोंसे सबको बचाओ ।

१३४ दीर्घश्रुत शर्म यच्छ— विशाल कीर्तिवाला सुख या घर हमें दे दो ।

१३४ येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा प्राता आ निषीदाति तान् त्रायस्व— जिनके घरमें घी और अन्नसे भरे पात्र लेकर परोसनेवाली रहती है, उनकी सुरक्षा करो ।

१३५ विदुष्टरः मन्द्रया आसा जिह्वया नः रयिं—श्रेष्ठ ज्ञानी प्रसन्न मुख तथा मधुरभाषणसे हमें ज्ञानरूप धन देवे ।

१३६ महः श्रवसा कामेन अश्व्या मघा राधांसि ददाति— बडे यशकी कामनासे वह घोडों तथा धनोंसे युक्त अन्न देता है ।

१३६ अंहसः पर्तृभिः शतं पूर्भिः पिपृहि— पापियोंसे संरक्षक सैंकडों किलोंसे हमें बचाओ ।

१३८ विधते दाशुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति- ज्ञानी दाता मनुष्यके लिये वह उत्तम बल तथा धन देता है ।

(ऋ० ७।१७)

१४१ स्वध्वरा कृणुहि— कुटिलता हिंसारहित कार्य कर ।

१४३ हे प्रचेतः! विश्वा वार्याणि वंस्व--हे ज्ञानी! सब स्वीकारनेयोग्य धन दे दो ।

१४४ ऊर्जः न-पातं— अपने बलको कम न करो ।

१४५ महः इयानः नः रत्ना विदधः— महत्त्वको प्राप्त होकर हमें रत्नोंको दे दो ।

(ऋ० ७।१८)

१४६ त्वे सुदुघा गावः, त्वे अश्वाः— तुम्हारे पास दुधारू गौवें और तुम्हारे पास घोडे हों ।

१४७ विशा गोभिः अश्वैः अस्मान् राये अभि-शिशीहि—सुंदर रूप, तथा गौवें और घोडोंसे युक्त हमें करके धनसे भी युक्त कर ।

१४८ राया पथ्या अर्वाची एतु— धनका मार्ग हमारे पास आवे ।

१४८ सुमतौ शर्मन् स्याम— उत्तम बुद्धिसे और सुख से हम युक्त हों ।

१४९ सुयवसे धेनुं दुधुक्षन्- उत्तम घास खानेवाली गौका दोहन करनेकी इच्छा करो ।

१५१ मत्स्यासः राये निशिताः-- मत्स्य (जैसे आपसमें एक दूसरेको खानेवाले) धनके लिये तीक्ष्ण (स्पर्धा करनेवाले) होते हैं ।

१५१ सखा सखायं अतरत्- मित्रमित्रको कष्टसे पार करता है । (सुबो० सं० २०६)

१५१ दुराध्यः अचेतसः सेघयन्तः- दुष्ट बुद्धिवाले मूढ लोग विनाश ही करते हैं।

१५३ चायमानः पत्यमानः पशुः अशायत्— अपने स्थानसे उखाडा गया, अतः भागनेवाला, पाशवी-शक्ति-वाला शत्रु मारा जावे।

१५४ मानु वध्रिवाचः सुतुकान् अमित्रान् अरंधयत्— मानवोंके हितके लिये व्यर्थ बड बड करनेवाले उत्तम पुत्रपौत्रोंसे युक्त शत्रुओंको उस वीरने मारा।

१५६ राजा श्रवस्या वैकर्णयोः जनान् न्यस्त— राजाने यशके लिये बिलकुल न सुननेवाले शत्रुके वीरोंका नाश किया।

१५६ सद्मन् बर्हिः नि शिशाति— घरमें दर्भोंको काटते हैं (वैसे शत्रुओंको काटो।)

१५८ एषां विश्वा दंहितानि पुरः सप्त सहसा सद्यः वितर्दं— इन शत्रुओंके सब सुदृढ नगरोंको सात प्राकारोंके साथ अपने बलसे इस वीरने तत्काल ही विनष्ट किया।

१५८ मृध्रवाचं जेष्म— असत्यभाषीपर हम विजय करेंगे।

१५९ गव्यवः द्रुह्यवः षष्टिः शता षट् सहस्रा षष्टिः च अधि षट् वीरासः निषुषुपुः— गौओंके चोर छ्यासट् हजार छ्यासठ वीर मारे गये हैं।

१६१ शर्धन्तं अनिन्द्रं परानुनुदे— ईश्वरके हिंसक द्वेषी शत्रुको दूर किया।

१६१ मन्युम्यः मन्युं मिमाय— क्रोधी शत्रुके क्रोध-को दूर किया।

१६१ पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे— शत्रुको भागने-वालेके मार्गसे भेज दिया।

१६३ शत्रवः शश्वन्तः ररधुः— शत्रु सदाके लिये नष्ट किये गये।

१६३ तस्मिन् तिग्मं वज्रं निजहि— उस शत्रुपर तीक्ष्ण शस्त्र फेंक।

१६५ ते पूर्व्याः सुमतयः संचक्षे— तुम्हारी पूर्व उत्तम बुद्धियां वर्णनीय हैं।

१६५ मन्यमानं देवकं जघन्थ— घमंडी दुष्टदेवके पूजकका नाश कर।

१६६ पराशरः शतयातुः— दूरसे शरसंधान करने-वाला सैंकडों यातना देनेवालोंका नाश करता है।

१६७ सूरिभ्यः सुदिनानि व्युच्छात्- ज्ञानियोंको उत्तम दिन प्रकाशित कर।

१६८ युध्यामधिं न्यशिशात्— युद्धसे क्लेश देनेवाले शत्रुका नाश किया जाय।

१७० क्षत्रं दूणाशं अजरं— क्षात्रबल नष्ट न हो, पर बढता जाय।

(ऋ० ७।१९)

१७१ एकः भीमः विश्वाः कृष्टीः च्यावयति—एक ही वीर सब शत्रु सैनिकोंको भगा देता है।

१७१ अदाशुषः गयस्य च्यावयति— कंजूस शत्रुके घरको वीर उखाड देता है।

१७२ दासं शुष्मं कुयवं निरंधयः—विनाशक, शोषक, सडे धान्यका व्यवहार करनेवाले शत्रुका नाश कर।

१७३ धृषता विश्वाभिः ऊतिभिः प्रावः— शत्रुको उखाड देनेके बलके साथ, सब संरक्षणके साधनोंसे प्रजाको सुरक्षित कर।

१७४ देववीतौ नृभिः भूरीणि हंसि— युद्धोंमें अपने वीरोंके द्वारा अनेक शत्रुओंका नाश कर।

१७४ दस्युं चमुरिं धुनिं न्यस्वापय—घातपाती कष्ट-दायी और घबराहट करनेवाले शत्रुका वध करो।

१७४ दभीतये भूरीणि हंसि— भयभीत लोगोंकी सुरक्षाके लिये बहुत दुष्टोंका वध कर।

१७५ हे वज्रहस्त ! तव तानि चौत्न्यानि—हे वज्र-धारी वीर ! तुम्हारे ये सुप्रसिद्ध बल हैं।

१७५ नव नवतिं पुरः अहन्—निन्यानवे नगरोंका नाश किया।

१७६ निवेशने शततमा अविवेषीः— निवासके लिये सौवी नगरीमें तूने प्रवेश किया।

१७७ अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व- क्रूरतारहित संरक्षणके साधनोंसे हमें सुरक्षित कर। (सुभा० सं० २३५)

१७७ सूरिषु प्रियासः स्याम- विद्वानोंमें हम प्रिय हों।

१७८ नरः प्रियासः सखायः शरणे मदेम— नेता और प्रिय मित्र होकर अपने स्थानमें आनन्दसे रहेंगे।

१७८ तुवंशं निशिशीहि— त्वरासे वशमें आनेवाले शत्रुको दूर कर।

१८० नृणां सखा शूरः शिवः अविता भूः— जनताका मित्र शूर कल्याण करनेवाला रक्षक हो जाओ।

१८१ तन्वा ऊती वावृधस्व— शारीरिक शक्ति तथा संरक्षक बल बढा दो।

१८१ वाजान् नः उपामिमीहि- अन्नों और बलोंको हमारे पास ले आओ।

१८१ स्तीन् उपामिमीहि— रहनेके लिये घर दो।

(ऋ० ७।२०)

१८१ स्वधावान् उग्रः वीर्याय जज्ञे- अपनी धारक-शक्तिसे युक्त वीर पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ होता है।

१८१ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः- मानवोंका हित करनेवाला जो करना चाहता है, वह कार्य कर छोडता है।

१८१ युवा अवोभिः नृषदनं जग्मिः- तरुण वीर रक्षक साधनोंके साथ मनुष्य रहनेके स्थानमें जाता है।

१८२ महः एनसः त्राता— वीर बडे पापसे बचाता है।

१८२ वीर जरितारं ऊती प्रावीत्- वीर वीरकाव्योंके गान करनेवालोंको संरक्षक साधनोंसे सुरक्षित रखता है।

१८२ दाशुषे मुहुः वसु दाता आभूत्— दाताको बहुत धन देता है।

१८४ युध्मः अनर्वा खजकृत्, समद्वा शूरः जनुषा सत्राषाद् अषाळ्हः स्रोजाः पृतना व्यासे, विश्वं शत्रूयन्तं जघान— युद्ध करनेवाला, युद्धसे पीछे न हटने-वाला, युद्धमें कुशल, युद्धमें जानेमें उत्साही, शूर, जन्मसे ही शत्रुका पराभव करनेवाला, स्वयं कभी पराभूत न होनेवाला, निजबलसे समर्थ वीर शत्रुसेनाको अस्तव्यस्त करता है, और सब शत्रुओंका वध करता है।

१८५ महित्वा तविषीभिः आ पप्राथ-अपने महत्त्वसे अपनी शक्तियोंके द्वारा विश्वमें प्रसिद्ध होता है।

१८५ हरिवान् वज्रं नि मिमिक्षन्- उत्तम घोडोंका प्रयोग करनेवाला वीर शत्रुपर अस्त्र फेंकता है।

१८६ वृषा वृषणं रणाय जजान— बलवान् पिता बलशाली पुत्रको युद्ध करनेके लिये उत्पन्न करता है।

१८६ नारी नर्यं ससूव- पत्नी मानवोंका हित करनेवाला पुत्र उत्पन्न करती है।

१८६ यः नृभ्यः सेनानीः प्रास्ति- वह मानवोंका हित करनेवाला वीर सेनापति होता है।

१८६ सः इनः सत्वा गवेषणः धृष्णुः— वह वीर स्वामी शक्तिमान चुराई गौओंकी खोज करनेवाला तथा शत्रुका पराभव करनेवाला है।

१८७ यः अस्य घोरं मनः आविवासत्, स जनः नुचित् भ्रेजते, न रेषत्- जो इसके प्रभावी मनको प्रसन्न रखता है वह मनुष्य स्थानभ्रष्ट नहीं होता और नाही क्षीण होता है।

१८७ यः इन्द्रे दुवांसि दधते स ऋतपा ऋतेजा राये क्षयत्- जो प्रभुपर भक्ति रखता है, वह सत्यपालक, सत्यप्रवर्तक धनके लिये रहता है, धन प्राप्त करता है।

१८८ पूर्वः अपराय शिक्षन्-पूर्वज वंशजको शिक्षण देता है।

१८८ देष्णं कनीयसः ज्यायान् अयत्- कुछ धन कनिष्ठसे श्रेष्ठके पास जाता है।

१८८ अमृतः दूरं पर्यासीत— न मरता हुआ दूर देशमें जाकर जो प्राप्त किया जाता है (वह भी धन है।)

१८८ चित्रं रयिं नः आ भर- यह सब प्रकारका धन हमें प्राप्त हो।

१८९ अघ्नतः चनिष्ठाः ते सुमतौ स्याम- हम विनष्ट न होते हुए, तथा धनधान्यसंपन्न होकर, तेरी प्रसन्नताके भागी बनें।

१८९ नृपीतौ वरूथे स्याम- जनताकी सुरक्षा करनेमें, तथा जनताको वरिष्ठस्थान प्राप्तकर देनेमें हम सफल हों।

१९१ नः इषे धाः- हमें धन तथा अन्नसे संपन्न कर।

१९१ वस्वी शक्तिः स्वस्तु— सुखसे निवास करनेकी शक्ति हमारे अन्दर अच्छी तरहसे रहे।

(ऋ० ७।२१)

१९४ विश्वा कृत्रिमा भीषा रेजन्ते- सब बनावटी शत्रु तेरे भयसे कांपते हैं। (सुभा० सं० २६६)

१९५ इन्द्रः नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्— इन्द्र वीर जनताके हित करनेके सब कार्य जानता है ।

१९५ भीमः आयुधेभिः एषां विवेश- यह प्रचण्ड वीर अनेक शस्त्रास्त्रोंसे शत्रुसैनिकोंमें घुसता है ।

१९५ जर्हृषाणः वज्रहस्तः महिना जघान- प्रसन्न-चित्तसे वज्र हाथमें लेकर अपनी महतीशक्तिसे शत्रुपर प्रहार करता है ।

१९६ यातवः नः न जुजुवुः- डाकू लुटेरे हमारे पास न आ जांय ।

१९६ वंदना वेद्याभिः नः न जुजुवुः- वंदन करके नम्रभाव दिखाकर हमारे अन्दर रहनेवाले हमारे अन्तःशत्रु, उनके ज्ञानपूर्वक बर्ते गये साधनोंके साथ हमारे अन्दर न रहें ।

१९६ स अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्— वह श्रेष्ठ वीर विषम भाव रखनेवाले शत्रुका नाश करता है ।

१९६ शिश्नदेवा नः ऋतं मा गुः— शिश्नको ही देव माननेवाले कामी लोग हमारे सत्यधर्मके स्थानपर न आ जांय ।

१९७ क्रत्वा क्ष्मन् अभि भूः- अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे पृथ्वीपरके अपने शत्रुओंका पराभव कर ।

१९७ ते महिमानं रजांसि न विव्यक्- तेरी महिमाको भोगी लोग नहीं जान सकते ।

१९७ स्वेन शवसा वृत्रं जघन्थ- अपने बलसे घेरनेवाले शत्रुको उसने मारा ।

१९७ शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्- शत्रु युद्ध करके तेरी शक्तिका अन्त न जान सके (ऐसी शक्ति धारण कर।)

१९८ पूर्वदेवाः असुर्याय क्षत्राय ते सहांसि अनु ममिरे— असुर शत्रुओंने अपने क्षात्र बलको तेरे सामर्थ्यसे कम ही माना था ।

१९८ इन्द्रः विषह्य मघानि दयते-इन्द्र शत्रुका पराभव करके धनोंका दान करता है ।

१९९ कीरिः अवसे ईशानं जुहाव- शिल्पी अपनी सुरक्षाके लिये प्रभुकी प्रार्थना करता है ।

१९९ भूरेः सौभगस्य अवः- सब प्रकारके ऐश्वर्योंका संरक्षण होना चाहिये ।

१९९ अभिक्षत्तुः वरूता- चारों ओरसे हिंसा करनेवाले शत्रुओंका निवारण कर ।

२०० नमोवृधासः विश्वहा सखाय स्याम- अन्न-की अधिक उपज करनेवाले सब सर्वदा आपसमें मित्र होकर रहें । एक ही कार्यमें दत्तचित्त रहे ।

२०० अवसा समीके अर्य अभीतिं वनुषां शवांसि वन्वन्तु- अपने बलसे युद्धमें आर्यदलके वीर आक्रमणकारियोंके तथा हिंसक शत्रुओंके बलोंका नाश करें ।

(ऋ० ७।१२)

२०६ ते असुर्यस्य विद्वान् तुरस्य गिरः न मृष्ये- तेरे सामर्थ्यको जाननेवाला मैं त्वरासे तेरे शत्रुका नाश करनेके कार्यकी प्रशंसा करना मैं नहीं छोडूंगा ।

२०६ स्वयशसः ते नाम सदा विवक्मि- अपने प्रभावसे यशस्वी होनेवाले ऐसे तेरे नामको मैं सदा गाता रहूंगा ।

२०९ मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उद्-श्नुवन्ति- सन्मान योग्य ऐसी तेरी महिमाको कोई पार नहीं कर सकता ।

२०९ ते राधः वीर्यं न उदश्नुवन्ति- तेरे धन और पराक्रमका पार कोई नहीं लगा सकता ।

२१० ते सख्यानि अस्मे शिवानि सन्तु- तेरी मित्रता हमारे लिये कल्याण करनेवाली होगी ।

(ऋ० ७।१३)

२११ समर्ये इन्द्रं महय- युद्धके समय वीरको उत्साहित करो ।

२१२ शुरुधः इरज्यन्त— शोकको रोकनेवाली कृतियाँ बढायी जाय ।

२१३ जनेषु स्वं आयुः न हि चिकीते- लोगोंमें अपनी आयु (कितनी है यह) कोई नहीं जानता ।

२१३ अंहांसि अस्मान् अतिपर्षि- पापोंसे हमें पार ले जाओ ।

२१४ त्वं धीभिः वाजान् विदयसे- तू बुद्धियोंके साथ बलोंको देता है ।

२१५ शुष्मिणं तुविराधसं- बलवान् तथा सिद्धि जिसे प्राप्त है ऐसा पुत्र प्राप्त हो । (सुभा० सं० १९५)

२१५ देवत्रा एकः मर्तान् दयते- देवोंमें एक ही (इन्द्र) मनुष्योंपर दया करता है ।

(ऋ. ७।२४)

२१६ वज्रबाहुं वृषणं अर्चन्ति— वज्रधारी बलवान् वीरकी सब पूजा करते है ।

२१६ स वीरवत् गोमत् नः धातु- वह वीरों और गौओंसे युक्त धन हमें दे देवे ।

२१७ सदने योनिः अकारि— रहनेके लिये घर बनाओ ।

२१७ नृभिः आ प्रयाहि—वीरोंके साथ आगे बढो ।

२१७ अविता वृधे असः- संरक्षक यश बढानेवाला हो ।

२१७ वसूनि ददः- धनका दान कर ।

२१० वृषणं शुष्मं वीरं दधत्- बलिष्ठ और सामर्थ्य-वान् वीर पुत्र हमें प्राप्त हो ।

२१० सुशिप्रः हर्यश्वः- उत्तम कवच धारण करनेवाला शीघ्रगामी घोडोंसे जानेवाला वीर हो ।

२१० विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः स्थविरेभिः वरीवृजत्- सब संरक्षक शक्तियोंके साथ उत्साहसे अपना वीर युद्धनिपुण वीरोंके साथ शत्रुनाश करे ।

२११ महे उग्राय वाहे वाजयन् एष स्तोमः अधायि— बडे उग्रवीरका वर्णन करनेवाला यह वीर काव्य है ।

२११ धुरि अत्य अधायि—धुरामें वेगवान् घोडा रखो ।

२११ अयं वसूनां इंट्टे— यह धनोंका स्वामी है ।

२११ नः श्रोमतं अधिधाः— हमें यशस्वी पुत्र हो ।

२१२ नः वार्यस्य पूर्धि— हमें भरपूर धन चाहिये ।

२२१ ते महीं सुमतिं प्रवेविदाम— तेरी प्रसन्नता हमें प्राप्त हो ।

२१२ सुवीरां इषं पिन्व— उत्तम वीरपुत्रोंके साथ रहनेवाला धन प्राप्त हो ।

(ऋ० ७।२५)

२१३ समन्यवः सेनाः समरन्त— उत्तम उत्साही सेनाएं लडती हैं ।

२२३ नर्यस्य महः बाह्वोः दिद्युत् ऊती पताति— मानवोंका हित करनेवाले बडे वीरके बाहुओंसे तेजस्वी शस्त्र शत्रुपर गिरता है ।

२१३ मनः विष्वद्र्यक् मा विचारीत्— मन इधर उधर न भटकता रहे (किसी एककार्यमें मन लगे ।)

२१४ दुर्गे मर्तासः नः अमन्ति, अमित्रान् निश्नथिहि— कीलेमें रहकर जो हमारा नाश करते हैं उन शत्रुओंका नाश करो ।

२१४ निनित्सोः शंसं आरे कृणुहि— निंदककी निंदा हमसे दूर रहे ।

२१४ वसूनां संभरणं नः आभर— धनोंका संग्रह हमारे पास हो ।

२१५ वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि— हिंसक मनुष्यका वध कर ।

२१५ अस्मे द्युम्नं रत्नं अधिदेहि— हमें तेजस्वी रत्न दो ।

२१६ तविषीवः उग्रः— बलवान् वीर उग्र होता है ।

२१६ विश्वा अहानि ओकः कृणुष्व— सब दिन अपने घरका संरक्षण करो ।

२१७ देवजूतं सहः इयानाः— देवोंद्वारा प्रशंसित बल हमें प्राप्त हो ।

२१७ तरुत्रा वाजं सनुयाम— दुःखोंसे पार होकर हमें बल प्राप्त हो ।

२१७ सत्रा वृत्रा सुहना कृधि— शत्रु सदा सहजहीसे मारनेयोग्य हो जाय ।

(ऋ० ७।२६)

२३० पुत्राः पितरं अवसे हवन्ते— पुत्र पिताको अपनी सुरक्षाके लिये सहायार्थ बुलाते हैं ।

२३० सबाधः समानदक्षाः ईं अवसे हवन्ते— एक बंधनमें आये, समानतया दक्ष रहनेवाले इस वीरको अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं ।

२३१ सर्वाः पुरः समानः एकः सुनिमामृजे— शत्रुके सब नगर वह एक ही वीर उत्तम रीतिसे अपने वशमें करता है ।

२३१ यस्य मिथस्तुरः पूर्वीः ऊतयः— इस वीरके परस्पर मिले पूर्वकालसे चले आये सुरक्षाके साधन हैं ।

२३१ एकः तरणिः मघानां विभक्ता- एक ही तारक वीर धनोंका बंटवारा करता है । (क्रमशः पं० ३३०)